ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 01 नवम्बर 2015 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार 01 नवम्बर 2015 से 07 नवम्बर 2015

का.कृ. –05● वि० सं०–2072 ● वर्ष 58, अंक 44, प्रत्येक मगंलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 192 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,116 ● पृ.सं. 1–12 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

डी.ए.वी. कोटा में मनाया गया महात्मा आनंद स्वामी जन्मोत्सव

151 कुण्डीय यज्ञ, वैदिक कथा, प्रेरणादायी भजन, एवं प्रवचन हुए

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा एवं आर्य युवा समाज, राजस्थान के संयुक्त तत्वावधान में महात्मा आनन्द स्वामी का जन्मोत्सव 'आनन्द पर्व' के रूप में 16 व 17 अक्टूबर को डीएवी पब्लिक स्कूल, कोटा में मनाया गया। इस अवसर पर **151 कुण्डीय यज्ञ** का आयोजन किया गया। इससे एक दिन पूर्व डा. वागीश कुमार शर्मा जी के **'आओ चले सेवा से आनन्द की ओर'** विषय पर प्रवचन हुये जिसमें बड़ी संख्या में आर्य समाजी व शहर के गणमान्य अतिथि थे। इस अवसर पर प्रतिभाशाली विद्यार्थियों तथा शहर के सेवा–भावी आर्यसमाजियों का अंगवस्त्र पहनाकर सम्मानित किया गया।

यज्ञ महोत्सव का शुभारम्भ पाणिनी महाविद्यालय, बनारस से पधारीं हुई **डा. प्रीति विमर्शिनी व महाविद्यालय की ब्रह्मचारिणीयों के ब्रह्मत्व** में किया गया। इस भव्य और श्रेष्ठ आयोजन के **मुख्य अतिथि थे श्री पूनम सूरी जी, प्रधान, आर्य प्रार्दशिक प्रतिनिधि सभा एवं डीएवी कॉलेज प्रबन्धकर्त्री समिति**, नई दिल्ली। इस अवसर पर आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा एवं आर्य समाज, राजस्थान द्वारा मुख्य अतिथि **श्री पूनम सूरी जी** का हार्दिक स्वागत किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता साध्वी उतमा यति जी ने की। मुख्य अतिथि ने इस आयोजन को आयोजित करने हेतु श्री अशोक कुमार प्रधान एवं प्राचार्या श्रीमती सरिता रंजन की विशेष प्रशंसा की। प्रधान जी ने मंच पर आर्यसमाज के संन्यासियों व विद्वानों का सम्मान कर आर्य परम्परा का निर्वहन किया। कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि रहे डा. वी. सिंह, निदेशक, डीएवी प्रबन्धकर्त्री समिति, नई दिल्ली। अपने उद्‌बोधन में मुख्य अतिथि महोदय श्री पूनम सूरी जी ने कहा कि जीवन में सदैव मुस्कुराते रहना ही ईश्वर की सर्वोपरि भक्ति है। उन्होंने वर्तमान में तथा–कथित धर्म गुरूओं पर चुटकी लेते हुए आर्य समाज के महत्व को स्पष्ट किया एवं सामाजिक, आध्यात्मिक उन्नति के लिये आर्य समाज को अहम् बताया, तथा ऋषि परम्परा को जीवन में अपनाने की बात कही।

इस अवसर पर बड़ी संख्या में शहर के आर्य समाज के पदाधिकारी व सदस्य तथा गणमान्य अतिथि एवं अभिभावक उपस्थित थे। कार्यक्रम का शुभारम्भ आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उप सभा के प्रधान श्री अशोक कुमार शर्मा जी के स्वागत भाषण से हुआ जिसमें मुख्य अतिथि के व्यक्तित्व के उज्जवल पक्षों को उपस्थित आर्यजानो के सामने रखते हुए सपत्नीक इस आयोजन में आने पर हार्दिक अभिनन्दन और धन्यवाद किया गया। उन्होंने राजस्थान उपसभा एवं आर्य युवा समाज की गतिविधियों पर भी प्रकाश डाला। आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के सह–मंत्री श्री सत्यपाल जी ने महात्मा आनन्द स्वामी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला। श्री एस.के.शर्मा, जी महामंत्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली ने अपने सम्बोधन में प्रधान जी के नेतृत्व में आर्य समाज एवं डी.ए. वी. के कार्यक्रमों के उद्‌देश्य को रेखांकित करते हुए कहा कि डी.ए.वी. ऐसी संस्था है जो वर्तमान में छात्रों हेतु नवीनतम ज्ञान व वैदिक ज्ञान का अद्‌भुत समन्वय कर रही है।

श्री अजय ठाकुर द्वारा लिखित तथा श्री एम.एल. गोयल द्वारा निर्देशित नृत्यनाटिका '**श्रेय मार्ग के पथिक आनन्द स्वामी**' ने सभी को मंत्र–मुग्ध कर दिया। सहायता प्रकल्प के अन्तर्गत इस आयोजन के अन्त में जरूरतमंदों को सिलाई मशीनें व द्राई साइकिलें आदि वितरित किये गए।

माननीय प्रधान श्रीमान पुनम सूरी जी ने विद्यालय परिसर में औषधीय पौधा गूगल लगाकर वृक्षारोपण अभियान की प्रेरणा दी और कहा कि पर्यावारण शुद्धि हेतु यज्ञ के साथ हमें वृक्षारोपण कार्यक्रम को भी प्रमुखता से अपनाना चाहिए।

कार्यक्रम में **"स्मारिका"** का विमोचन भी मुख्य अतिथि द्वारा किया गया।

कार्यक्रम के अन्त में प्राचार्या श्रीमती सरिता रंजन गौतम ने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक एवं प्रभावपूर्ण ढंग से सभी का धन्यवाद व्यक्त करते हुए मान्य प्रधान जी का विशेष आभार व्यक्त किया और बताया कि आयोजन बेहद सफल रहा है। कार्यक्रम की सफलता ने डीएवी पब्लिक स्कूल कोटा की सफल परम्परा में एक ओर कीर्तिमान स्थापित कर दिया है।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – पूनम सूरी

आर्य जगत्

सप्ताह रविवार 01 नवम्बर, 2015 से 07 नवम्बर, 2015

सर्वाङ्ग-सुन्दर बनें

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिः, अगन्महि मनसा सं शिवेन।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायो, अनु मार्ष्टु तन्वो यद् विलिष्टम्।।

यजु. २.२४

ऋषिः वामदेवः। देवता त्वष्टा। छन्दः त्रिष्टुप्।

● [हम] **(वर्चसा)** ब्रह्मवर्चस से [और], **(पयसा)** दूध से, माधुर्य से, **(सम् अगन्महि)** संयुक्त हों, **(तनूभिः)** शरीरों से, **(सम्)** संयुक्त हों, **(शिवेन मनसा)** शिव मन से, **(सम्)** संयुक्त हों।, **(सुदत्रः)** शुभ दानी, **(त्वष्टा)** जगद्–रचयिता परमेश्वर, **(रायः)** [धन, चक्रवर्ती राज्य, सुख, आरोग्य आदि] ऐश्वर्यों को, **(वि–दधातु)** प्रदान करे, [और], **(यत्)** जो, **(तन्वः)** शरीर का, **(विलिष्टं)** त्रुटिपूर्ण अंग है, उसे, **(अनु मार्ष्टु)** परिमार्जित करे।

● हम चाहते हैं कि हम संसार में सर्वांग–सुन्दर बनकर रहें, षोडशकल चन्द्र के समान परिपूर्ण बनकर निवास करें। हमारे अन्दर ब्रह्मवर्चस हो, आत्मिक तेज हो, जिसके सम्बन्ध में कभी ऋषि विश्वामित्र ने कहा था कि ब्रह्म–तेज ही सच्चा बल है, अन्य बल उसके सम्मुख निःसार है। वह ब्रह्म–तेज का ही बल है, जिसके द्वारा शरीर से दुर्बल होते हुए भी अनेक मानव कोटि–कोटि जनों को अपने चरणों में झुकाते रहे हैं। साथ ही हमें 'पयः' भी प्राप्त हो। 'पयस्' शब्द दूध का वाचक होता हुआ भी रस, माधुर्य, शान्ति, निर्मलता, निश्छलता, सात्त्विकता आदि का भी द्योतक है। हमें पीने के लिए गो–रस और हृदय में बसाने के लिए उक्त माधुर्य आदि गुण प्राप्त हों। हम शरीरों से भी पुष्ट हों। हृदय में बसाने के लिए उक्त माधुर्य आदि गुण प्राप्त हों। हम शरीरों से भी पुष्ट हों। हमारे अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय रूपवाले पंच शरीरों का समुचित विकास हो। हमारा मन भी शिव हो, क्योंकि जब तक मन अशिवसंकल्पों से युक्त रहेगा, तब तक हमें किसी भी क्षेत्र में उत्कर्ष प्राप्त होना सम्भव नहीं है। मन को साधकर ही मनुष्य उन्नति की ओर अग्रसर होता है, और मन की जीत पर ही उसकी जीत निर्भर है, मन के हारने पर उसका हारना अवश्यम्भावी है।

'त्वष्टा' परमेश्वर सारे जगत् का तरखान है, शिल्पी है, जिसका हस्त–कौशल सम्पूर्ण विश्व में प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है। वह **'सुदत्र'** है, निरंतर सबको शुभ वस्तुओं का दान करता रहता है। वह हमें भी शुभ ऐश्वर्यों का–धन, चक्रवर्ती राज्य, सुख, आरोग्य आदि का दान करे। वह हमें भौतिक एवं आध्यात्मिक समस्त शुभ सम्पत्तियों का अधीश्वर बनादे। हमारे शरीर का कोई अंग यदि सदोष या त्रुटिपूर्ण हो गया है, तो वह कुशल शिल्पी उसे परिमार्जित, सुसंस्कृत एवं परिशुद्ध कर दे। यदि हमारे नेत्रों की दृष्टि–शक्ति मन्द हो गई है अथवा दृष्टि–शक्ति मन्द हो गई है अथवा दृष्टि–शक्ति तीव्र होते हुए भी हम उसका उपयोग अभय दृश्यों को देखने में करते हैं, तो त्वष्टा प्रभु हमारी मन्द या अपवित्र नेत्र–शक्ति को शुद्ध कर दें। इसी प्रकार श्रोत्र, मुख, नासिका आदि अन्य अंगों को भी मांजकर तीव्र–शक्तिमय एवं पवित्र कर दे। हे कलाकार त्वष्टा प्रभु! तुम हमारी तूलिका से रंग भरकर हमें सर्वांग–सुन्दर, सर्व–गुण–सम्पन्न और सर्व–शक्ति–समन्वित कर दो।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

भक्त और भगवान

● महात्मा आनन्द स्वामी

पिछले अंक में बात हो रही थी इस संसार में मनुष्य यदि वेद के बताये हुए निष्काम कर्मो को करता हुआ सौ वर्ष जिये तो उसे कर्म लिपटता नहीं। निष्काम कर्म का अर्थ है ऐसा जो आत्मभावना से किया जाये। आत्मभावना से कर्म करना बहुत सरल नहीं।

आत्म–ज्ञान को जानने वाली बुद्धि जिसकी सारथि है और मन को जो लगाम की भांति वश में रखता है, वह नर है। आत्मा–ज्ञान को जानने वाली बुद्धि का अर्थ है "सात्विक बुद्धि" जिसे ऋतम्भरा कहते हैं। बुद्धि सात्विक हो, मन वश में हो तभी मनुष्य नर है, नही तो वह केवल एक प्राणी है श्वास लेता है, जीता है। और यदि वास्तव में वह नर है तो कर्म उसे लिपटेगा नही, फिर प्रभु दर्शन का मार्ग का खुला है।

वासना ही पहली रुकावट है जो आत्मा और परमात्मा के मध्य दीवार बनकर खड़ी है। यह है सबसे बड़ा शत्रु, सबसे बड़ा पाप।

वासना के साथ साथ क्रोध भी रुकावट है। क्रोध वह है जो देश की रक्षा के लिए, धर्म की रक्षा के लिए किया जाए।

अब आगे...

चौथा दिन

मेरी प्यारी माताओ तथा सज्जनो!

कल मैंने वासना की चर्चा की थी। समझाया था कि यह वासना क्या है। फिर भी आज एक भाई पूछने आया कि वासना क्या है। प्रतीत होता है यह वासना पीछा नहीं छोड़ेगी। इसलिए आज एक बार पुनः वासना की बात सुनिये।

वासना का सीधा अर्थ है 'जो बस जाये।' इसलिये 'बू' को 'बास' भी कहते हैं क्योंकि वह बस जाती है। सुगन्ध बनकर वह रहती है फूल में–

तेरा प्रभु तुझमें बसे, ज्यों फूलों में बास।

परन्तु फूलों को थोड़ी देर एक स्थान पर रखे रहिये, फिर उठाकर दूसरे स्थान पर ले जाइये। जहाँ आपने उनको पहले रखा था वहाँ फूल नहीं हैं, परन्तु बाहर से आनेवाला कोई भी उस स्थान को देखकर कहेगा कि, "क्या आपने यहाँ फूल रखे थे?" यही नहीं, यदि उसकी नाक ठीक है और जुकाम से बन्द नहीं हो गई है तो वह आपको यह भी बतायेगा कि आपने कौन–से फूल वहाँ रखे। क्यों उसको यह भी बात ज्ञात हुई? इसलिये कि भले ही फूल चले गये वहाँ से, परन्तु उनकी बास वहीं पर बस रही है, बैठ गई है। ठीक इसी प्रकार जो भी अच्छा या बुरा कर्म हम करते हैं, उसका फल मिलता है अवश्य। फल उस भावना का मिलता है जिससे कर्म किया जाये। जैसी नियत वैसा फल। परन्तु फल मिलने के पश्चात् वह कर्म समाप्त नहीं हो जाता, उसकी वासना शेष रह जाती है। यूँ समझिये कि कर्म एक फूल है, फल उसकी सुगन्ध है। फूल और सुगन्ध के हटा देने के पश्चात् जो वस्तु शेष रह जाती है, वह वासना है।

सीधा–सा फार्मूला यह है कि जैसी भावना वैसा फल, जैसा फल वैसी वासना।

मस्तिष्क में जिस प्रकार याद की लकीर बन जाती है, इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर में वासना की एक लकीर बैठ जाती है।

एक ही कर्म को दो भिन्न–भिन्न व्यक्ति यदि अलग भावना से करें तो कर्म का फल भी अलग होगा। उसकी वासना भी अलग होगी।

एक व्यक्ति चाँदनी चौक में चला जाता है। डेढ़ सौ रुपया उसके पास है। एक डाकू ने उस रुपये को देखा। उस व्यक्ति के पीछे हो लिया कि अवसर मिले तो वह रुपया छीन लूँ। रात्रि का समय है। भीड़ बहुत है नहीं। चाँदनी चौक से निकलकर वह व्यक्ति बाग में जाता है। डाकू उसके पीछे है। एक स्थान पर अँधेरा देखकर वह अपना छुरा निकालता है। झपटकर उस व्यक्ति के आगे होता है। उसके पेट में छुरा घोंप देता है। वह व्यक्ति चिल्लाता है। डाकू चिल्लाहट को अनसुना करके उसकी जेब से डेढ़ सौ रुपया निकाल लेता है। परन्तु उसने देखा नहीं कि मरनेवाले की चिल्लाहट सुनकर दो सिपाही वहाँ आ पहुँचे। डाकू दौड़ना चाहता है, सिपाही उसे पकड़ लेते हैं। उसे थाने में ले–जाया जाता है, मुकद्दमा चलता है, फाँसी का दण्ड होता है।

अब एक ओर व्यक्ति की बात सुनिये! उसके पास भी डेढ़ सौ रुपया है परन्तु वह चाँदनी चौक में नही जा रहा, अपने घर में खाट पर पड़ा है। उसका जीवन भार है। वह अस्पताल में जाता है। डॉक्टर से कहता है– यह रसौली निकाल दो। डॉक्टर डेढ़ सौ रुपया लेता है। उसे लेने के बाद रोगी को ऑपरेशन–टेबल पर लिटाता है। अपना नश्तर निकालता है। मरीज़ का पेट चीर देता है। परन्तु रसौली बहुत बड़ी है,

वह ठीक प्रकार से निकलती नहीं, मरीज़ मर जाता है। तब क्या कोई डॉक्टर को पकड़ेगा? उसे थाने में ले–जाएगा? उस पर मुकद्दमा चलेगा? उसको फाँसी का दण्ड देगा? नहीं, ऐसा कुछ नहीं होगा।

इन दोनों व्यक्तियों का कर्म एक हैं। दोनों ने दूसरे से डेढ़ सौ रुपया लिया है, उसके पेट में छुरा घोंपा है। दोनों ने व्यक्ति को मार दिया है, फिर भी दोनों को फल अलग–अलग मिलता है क्योंकि कर्म के एक होने पर भी दोनों भी भावना अलग–अलग थी।

परन्तु वह बात केवल चाँदनी चौक और अस्पताल में ही नहीं होती प्रत्येक स्थान पर होती है। जैसी भावना हो वैसा फल मिलता है। वैसी ही वासना पीछे रह जाती है। अंग्रेजी के एक कवि ने इस बात को बहुत सुन्दर शब्दों में कहा है। उसके शब्द हैं–

Sow an act you reap a habit.
Sow a habit you reap a character.
Sow a character you reap a destiny.

अर्थात् एक कर्म कीजिये उससे स्वभाव बनेगा। स्वभाव को बोइये उससे चरित्र–निर्माण होगा। चरित्र को बोइये तो उसका भाग्य बनेगा, जो बदलता नहीं। यह बात सौ प्रतिशत ठीक है। आपका भाग्य कहीं आकाश से नहीं आया। आपने स्वयं उसको बनाया है। जैसा कर्म करेंगे उसका फल अवश्य मिलेगा–

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

किया हुआ कर्म अच्छा है या बुरा, उसका फल भोगे बिना चारा नहीं। कर्म करो, फल मिलेगा। फल का जन्म हो जाने पर भी वासना शेष रहेगी। यह फिर उसी कर्म को करायेगी। फिर फल मिलेगा। वासना और भी दृढ़ हो जाएगी। तब वह फिर कर्म कराएगी, फिर फल, फिर वासना, फिर कर्म– इसी प्रकार यह चक्र चलता जाएगा। वासना को समाप्त किये बिना इससे छुटकारा नहीं मिलेगा। इस बात को और भी खोलकर सुनिये।

कल में आपको बात रहा था कि वासना चित्त में रहती है, परन्तु यह चित्त क्या है? किससे सम्बन्ध रखता है यह? कौन इसका परिवार है? कहाँ से उत्पन्न हुआ? इसकी खोज की गई तो पता लगा कि एक समय था जब यह सब–कुछ जो आज दृष्टिगोचर होता है, कुछ भी नहीं था। केवल प्रकृति थी सम–अवस्था में, कोई रूप नहीं, बू नहीं, ध्वनि नहीं , कोई देखनेवाला नहीं, दीखने वाला नहीं। यह था प्रकृति का पहला रूप जिसको अस्मिता कहते है। इस अस्मिता प्रकृति में भगवान् की सविता शक्ति से हलचल उत्पन्न हुई, गति आने लगी, उथल–पुथल होने लगी, तब इस अस्मिता से अहंकार उत्पन्न हुआ। अहंकार में और गति हुई, तब चित्त बना। प्रकृति, अस्मिता, अहंकार और चित्त, यह सब जड़ हैं। इसमें कोई होश नहीं, बेहोश हैं सारे। चित्त यदि होश में प्रतीत होता है, चेतन–सा दिखाई देता है, तो इसलिए कि उसमें आत्मा का प्रतिबिम्ब पड़ रहा है। यह आत्मा के साथ रहता है। चुम्बक आपने देखा होगा। वह लोहे को खींच लेता है; यह उसकी शक्ति है। साधारण लोहे में यह शक्ति नहीं। परन्तु साधारण लोहे को चुम्बक के साथ रखिये। कुछ देर इसके साथ पड़ा रहने दीजिये तो इस टुकड़े में भी चुम्बक की शक्ति आ जाती है। छोटी–छोटी सुइयों को वह भी खेंच लेता है। यह शक्ति उसकी अपनी नहीं, बहुत देर तक रहेगी भी नहीं। इसी प्रकार चित्त के भीतर जो चेतन शक्ति–सी प्रतीत होती है वह उसकी अपनी नहीं, आत्मा की है। बहुत समय तक रहेगी नहीं।

प्रायः मनुष्य समझता है मैं चित्त हूँ, परन्तु जिसने चित्त की वास्तविकता को जाना है, उसे पता है कि चित्त तो जड़ है। मैं जड़ नहीं हूँ। इसलिए मैं चित्त नहीं हूँ, आत्मा हूँ।

इस चित्त की पाँच अवस्थाएँ हैं– क्षिप्त, विक्षिप्त, मूढ़, एकाग्र ओर निरुद्ध। पहली अवस्था वह है जब वह संसार के धन्धों में फँसा रहता है। दूसरी दशा में पागल की भाँति यही अशान्त और व्याकुल कार्य करता है। तीसरी अवस्था में मूर्ख व्यक्ति की भाँति यही भूल जाता है कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। चौथी दशा वह है जब एक स्थान पर टिक जाता है, एक बिन्दु पर आकर एकाग्र हो जाता है। पाँचवीं अवस्था वह है जब उसकी सभी वृत्तियाँ एक केन्द्र पर आकर रुक जाती हैं, कोई हलचल नहीं रहती, कोई अशान्ति नहीं। महर्षि पतञ्जलि ने इस अवस्था को योग कहा है। योग की परिभाषा करते हुए उन्होंने कहा–

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः (योगदर्शन 1 ।2)

चित्त की वृतियों का निरोध अर्थात् रोक देना ही योग हैं।

ये है चित्त की पाँच अवस्थाएँ। अब इनका स्वभाव सुनिये! चित्त का पहला स्वभाव है 'प्रख्या' अर्थात् देखी–सुनी बातों का बार–बार चिन्तन। दूसरा स्वभाव है, 'प्रवृत्ति' अर्थात् देखी–सुनी बातों के सम्बन्ध में बार–बार सोचने से उनकी ओर झुकाव हो जाना। और तीसरा स्वभाव है 'स्थिति अर्थात् जिस बात की ओर झुकाव हुआ उसमें लगाव हो जाना, टिक जाना, ठहर जाना।

यह बीती बातों को बार–बार स्मरण करना अच्छी बात नहीं है। ऐसे लोगों को आप मिलिये तो वे आपको अपने दुःख की कहानियाँ सुनायेंगे। वास्तव में वह दुःख समाप्त हो चुका; परन्तु लोग अब भी उसे समाप्त होने देना नहीं चाहते। बार–बार उसकी कहानी दोहराते हैं; स्वयं भी दुःखी होते है, दूसरों को भी दुःखी करते हैं। इसलिए हमारे ऋषियों ने लोगों को जाप करने को कहा और उन्हें कहा कि याद ही करना है तो भगवान् के किसी नाम को बार–बार याद करो। ओ३म का जाप करो। उसकी बात सोचो जो सबको बनानेवाला है। इसलिए वेद भगवान् ने कहा–

ओं क्रतो स्मर। (यजु.)

हे कर्म करनेवाले आत्मा! ओम् को याद कर।

चित्त के प्रख्या स्वभाव को बदल दीजिये, उत्तम मार्ग पर लगा दीजिये तो फिर यह ठीक मार्ग पर चलेगा। ठीक बात में इसकी स्थिति होगी, उसमें यह टिकेगा।

इस चित्त में वासना रहती है। इसको बदल दीजिये। ऐसा बना दीजिये कि इसमें कोई बुरी बात न रह सके तो बुरी वासना के लिए इसमें रहना असम्भव हो जाएगा।

इस सम्बन्ध में एक और बात कहनी भी आवश्यक है। व्यास मुनि जी ने चित्त का वर्णन करते हुए उसका एक और स्वभाव भी बताया है। स्वभाव यह है कि एक होने पर भी अनेक बातों में चला जाता है–

एकमनेकार्थवस्थितं चित्तम्।

जाप कर रहे हैं गायत्री मंत्र का या ओम् नाम का और यह श्रीमान् चल पड़ते हैं कहीं और। दर्शनकार कहते हैं कि यह चित्त ऐसा ही है। परन्तु ऐसा होना नहीं चाहिए–

माला तो कर में फिरे,
जीभ फिरे मुख माहिं।
मनीराम चहुँ दिश फिरे,
यह तो सिमरण नाहि।।

सचमुच यह स्मरण नहीं। माला के मनके अँगुलियों पर फिसलते जा रहे हैं। जिह्वा प्रभु का नाम कह रही है और मन महाराज कनाट प्लेस की दुकानों का चक्कर लगा रहे हैं। इस प्रकार स्मरण नहीं होता। बहुत बड़ी रुकावट है यह, बहुत बड़ी हानि। परन्तु इस चित्त को रोकें किस प्रकार? उसका उत्तर महर्षि पतञ्जलि ने दिया। उन्होंने कहा है–

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः।

इस रुकावट को हटाने के लिए एक तत्त्व का अर्थात् ब्रह्मतत्व का अभ्यास करो। ओम् का जाप करो। लगातार करो। किसी भी प्रकार से करो। निरन्तर जाप करने से अन्त में कृपा अवश्य होगी–

ओम् का सिमरण नित्य कर,
जिस विधि सिमरा जाय।
कभी तो दीनदयाल जी,
बोलेंगे मुस्काय।।

उसकी कृपा अपार है, उसकी ओर से निराश न हो जाओ। जो इतने बड़े विश्व को उत्पन्न करता है, करोड़ों–अरबों सूर्यमण्डलों को बनाता है, जो प्रकाश देता है, वृष्टि करता है, पृथिवी की छाती से अन्न देता है, फूलों में रस देता है, वह निश्चित रूप में इस प्रकार को भी सुनेगा। तुम पर भी कृपा करेगा। उसका नाम जपते जाओ, फल मिलेगा अवश्य–

तुलसी अपने राम को,
रीझ भजो या खोज।
भूमि पड़े उपजेंगे ही,
उलटे सीधे बीज।।

किसी भी प्रकार गिरें, खेत में गिरे हुए बीज आखिर उपजेंगे अवश्य। इसलिए प्रतिदिन जाप करो। भृकुटि में, माथे में, नाक से ऊपर– उस जगह दोनों आँखों के बीच में ओम् को देखने का प्रयत्न करो। उपनिषद् कहता है कि ईश्वर का कोई रूप नहीं, कोई रंग नहीं, इसलिए ओम् के रूप में उसे भृकुटि में देखने का यत्न करो। चलते–फिरते, उठते–बैठते हर समय यह नाम लो 'ओ३म् तत्सत्'। लगातार कहते जाओ। चित्त को रोकने का यह सरल उपाय है। निरन्तर अभ्यास करने से वह रुकता है।

शेष अगले अंक में....

वैदिक प्रार्थना

मा मा हिँसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा
दिवँसत्यधर्मा व्यानट्।
यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम।
यजु. 12.102

He who has created this beautiful earth
and the vast splendid skies
which overcast it
and the rich resources of
life-giving sweet water;
To Him we present our
offerings of devotion.
May He protect us always !

यह धरा जिसने रची है, यह सुविस्तृत
व्योम ताना, ज्योति–जगमग, अटल नियमों से
नियंत्रित,
चित्त–आह्लादक सलिल जिसने बनाये
विपुल विस्तृत, न कभी हमको सताये।
अर्चना नैवेद्य अपने हम उसी के हेतु लाये।

महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज : अतीत एवं वर्तमान

● डॉ. विनोदचन्द्र विद्यालंकार

एक सौ चालीस वर्ष पूर्व महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा मुम्बई में आर्य समाज की विधिवत् स्थापना की गई थी। उन्होंने इसकी स्थापना किसी नये सम्प्रदाय, मत या पन्थ के रूप में नहीं की थी, वरन् इसे एक ऐसे संगठन के रूप में स्थापित किया गया था, जिसके सुनिश्चित उद्देश्य और सुनिर्धारित नियम हैं। इस समाज की स्थापना का स्पष्ट उद्देश्य था कि सम्पूर्ण संसार का उपकार किया जाये या मानव मात्र का हित–कल्याण सम्पादित किया जाए यानी सबकी शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति की जाए। स्वामी जी को यह अभिप्रेत था कि लौकिक उन्नति और परमार्थ साधन दोनों द्वारा स्वदेश (भारत) का हित किया जाये और अपने इस कार्य को स्वदेश तक ही सीमित न रखकर सम्पूर्ण संसार या मनुष्य मात्र के हित के लिए प्रयत्न किया जाये। आर्यसमाज के नौवें नियम में इसी बात को अधिक स्पष्ट रूप से कहा गया है, **"प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में संतुष्ट नहीं रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में ही अपनी उन्नति समझनी चाहिए।"** सत्रहवें नियम में इस बात को अधिक स्पष्ट कर दिया गया था, **"इस समाज में स्वदेश के हितार्थ दो प्रकार की शुद्धि के लिए प्रयत्न किया जायेगा: एक परमार्थ और दूसरी लोक व्यवहार। इन दोनों का शोधन और शुद्धता की उन्नति तथा सब संसार के हित की उन्नति हो जायेगी।"**

मनुष्यों के वैयक्तिक एवं सामूहिक हित–कल्याण का यह महत्वपूर्ण कार्य ऐसे लोगों द्वारा सम्पादित किया जा सकता है, जो सत्य–विद्यादि गुणयुक्त, उत्तम गुण–कर्म–स्वभाव वाले, धर्मात्मा और परोपकारी हों। इसी प्रकार के लोगों को ही महर्षि दयानन्द ने आर्य माना है और उन्हीं के संगठन को "आर्यसमाज" की संज्ञा दी है। उन्हें यही अभीष्ट थी कि सत्पुरुष, सदाचारी और परोपकारी व्यक्ति आर्यसमाज के सभासद् बनें (बम्बई में निर्धारित आठवां नियम) और वे मनुष्य मात्र के हित–कल्याण के सम्पादन के लिए प्रयत्न करें।

बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना करते समय स्वामी जी के मन में कौन से विचार थे, इसकी जानकारी उस भाषण द्वारा प्राप्त की जा सकती है, जो उन्होंने समाज को स्थापित करने का आग्रह करने वाले लोगों के समक्ष दिया था। उन्होंने कहा था कि **"यदि आप समाज द्वारा मानव–समाज के हित के लिए कुछ कर सकते हैं तो समाज की स्थापना अवश्य कीजिए। मैं आपके मार्ग में बाधक नहीं बनूंगा। पर यदि आप इसका संगठन समुचित रूप से नहीं करेंगे तो भविष्य में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जायेंगी। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं आपका पथ–प्रदर्शन उसी प्रकार से करूँगा, जैसे कि दूसरों का करता हूँ। यह बात स्पष्ट रूप से अपने मन में रख लीजिए। मेरे मन्तव्य कोई असाधारण व अद्वितीय नहीं है और न मैं सर्वज्ञ ही हूँ। अतः यदि युक्तिपूर्वक विचार–विमर्श के अनन्तर भविष्य में मेरी कोई भूल आपके आगे चलकर आए तो उसे ठीक कर लीजिए। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो यह समाज भी आगे चलकर एक सम्प्रदाय बनकर रह जाएगा। भारत में जो मत–मतान्तर विद्यमान हैं, उनका कारण यही है कि इसमें गुरु के वचन को सत्य की कसौटी मान लिया गया, जिसके परिणामस्वरूप लोग धर्मान्ध हो गये। उनमें कलह उत्पन्न हो गया। सत्यज्ञान का विनाश हो गया और वे पूर्वाग्रहों से ग्रस्त होने लगे। भारत की वर्तमान दुर्दशा इसी ढंग से हुई है और इसी ढंग से समाज का रूप भी एक अन्य सम्प्रदाय का हो जाएगा। यह मेरी निश्चित सम्मति है। भारत में चाहे कितने ही विभिन्न साम्प्रदायिक मत–मतान्तर प्रचलित रहें पर यदि वे सब वेदों की मान्यता स्वीकार करते हैं तो वे सब छोटी–छोटी नदियाँ वैदिक धर्म के महासमुद्र में मिलकर एक हो जायेंगी और धर्म की एकता स्थापित हो सकेगी।"** (द्रष्टव्य आर्यसमाज का इतिहास, प्रथम भाग, सत्यकेतु विद्यालंकार, पृष्ठ 251)

बम्बई समाज की स्थापना के समय अपने व्याख्यान में स्वामी जी ने यह भी कहा था, **"हमारा कोई स्वतंत्र मत नहीं है। मैं तो वेद के अधीन हूँ। हमारे भारत में 25 करोड़ आर्य हैं। किसी–किसी बात में उनमें कुछ–कुछ मतभेद हैं, जो विचार करने से स्वयं ही दूर हो जायेंगे। मैं संन्यासी हूँ और मेरा कर्तव्य यही है कि आप लोगों का जो अन्न खाता हूँ, उसके बदले में जो सत्य समझता हूँ, उसका निर्भयता से उपदेश करूँ, मुझे यश–कीर्ति की कोई इच्छा नहीं है। चाहे कोई मेरी स्तुति करे या निन्दा करे, मैं अपना कर्तव्य समझकर धर्म का बोध कराता हूँ। चाहे कोई माने या न माने, इसमें मेरी कोई हानि लाभ नहीं है।"**

स्वामी जी आर्यसमाज की विचारधारा को मानने वाले व्यक्तियों की संख्या की तुलना में उनके गुणों और सत्कर्मों को अधिक महत्त्व देते थे। उनके मत में ऐसे व्यक्तियों को ही सभासद् बनाया जाना चाहिए जो सत्पुरुष, सत्यनीतियुक्त और सदाचारी हों। वे यह भी चाहते थे कि इस समाज के प्रधान आदि सब सभासद् परस्पर प्रीति के लिए अभिमान, हठ, दुराग्रह और क्रोध आदि सब दुर्गुणों को छोड़कर उपकार, सुहृदयता एवं निर्वैर भाव से परस्पर सम्प्रीति करने वाले हों। उनके इसी भाव को बम्बई में निर्मित आर्यसमाज के 22वें नियम में व्यक्त किया गया था। वे इस सम्बन्ध में जी सजग थे कि जब तक नौकरी करने और कराने वाला आर्यसमाज मिले तब तक और किसी की नौकरी न करें और न किसी अन्य को नौकर रखें। (द्रव्यव्य नियम संख्या 26)।

बम्बई आर्यसमाज की स्थापना के समय आरम्भ में लगभग 100 व्यक्ति उसके सदस्य थे, जिसमें स्वामी जी भी सम्मिलित थे। अधिकांश सदस्यों के चाहने पर भी स्वामी जी ने कभी भी आर्यसमाज का प्रधान या अधिनायक होना स्वीकार किया नहीं। वे एक साधारण सदस्य के रूप में ही समाज की सर्वतोमुखी उन्नति में संलग्न रहे। वे कदापि यह नहीं चाहते थे कि आर्यसमाज सम्प्रदाय का रूप धारण करे और उन्हें गुरु मानकर उनकी पूजा करने लगे। अतः वे इस विषय में इतने अधिक सावधान थे कि बम्बई में समाज की स्थापना हो जाने पर जब श्री हरिश्चन्द्र चिन्तामणि ने उनकी फोटो लेनी चाही तो स्वामी जी ने फोटो की अनुमति इस शर्त पर दी कि आर्यसमाज मंदिर में उनकी फोटो न रखी जाये। यह दूसरी बात है कि उनके इस आदेश की अपेक्षा कर आज आर्यसमाजों, आर्य संस्थाओं आदि में उनके विविध रूपों में फोटो लगाये जाते हैं तथा भित्तियों पर जीवन की विभिन्न घटनाओं को प्रदर्शित करने वाले काल्पनिक चित्र बनवाये जाते हैं।

स्वामी जी ने प्रथम आर्यसमाज की स्थापना के साथ ही यह व्यवस्था कर दी थी कि इस समाज में प्रत्येक देश के मध्य एक प्रधान समाज होगा और अन्य समाज शाखा–प्रशाखा होंगे (नियम 3) तथा अन्य सब समाजों की व्यवस्था प्रधान समाज के अनुकूल रहेगी (नियम 4)। इस व्यवस्था में प्रधान समाज में स्वामी जी का आशय प्रान्तीय प्रतिनिधि सभा तथा सार्वदेशिक प्रतिनिधि सभा से रहा होगा। प्रांत, देश, विदेश की समाजों में पारस्परिक समन्वय बनाये रखने तथा विभिन्न मतों व सम्प्रदायों के विकास की आकांक्षा से बचे रहने की दृष्टि से यह प्रावधान अत्यावश्यक एवं समयोचित था। इससे स्वामी जी की दूरदृष्टि का संकेत मिलता है।

बम्बई आर्यसमाज की स्थापना के बाद स्वामी जी लगभग 4 वर्ष जीवित रहे और उनका यही प्रयत्न रहा कि सभी समाज एकसूत्र में आबद्ध रहें तथा आर्यसमाज तथा आर्य समाज का कार्य निर्बाध रूप से आगे बढ़ता रहे। वे आजीवन अपने मन्तव्यों के अनुरूप अपने व्याख्यानों, शास्त्रार्थों एवं साहित्य के माध्यम से लोक हितार्थ मूर्तिपूजा, धार्मिक अंध–विश्वास तथा सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध जनजागृति पैदा करने के लिए आन्दोलन करते रहे। ये ही आन्दोलन अंततः उनकी मृत्यु का कारण बने। स्वामी जी ने कितने उच्च आदर्शों एवं मन्तव्यों को सामने रखकर आर्यसमाज के नियम–उपनियम निर्धारित कर कैसी विलक्षण व्यवस्था की थी ताकि सभी सभासद् एकसूत्र में बंधे रहकर समाज के कार्य को आगे बढ़ाते हुए 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम' को साकार करने में सन्नद्ध रहें। तदनुरूप न केवल भारत में वरन् अन्य देशों में भी आर्यसमाजों की बहुत बड़ी संख्या में स्थापना हुई। 1883 में भारत के विभिन्न नगरों में 85 से अधिक आर्यसमाजें थीं जो एक शताब्दी पूरी होते–होते भारत तथा विदेशों में लगभग 5500 हो गईं। उत्तरोत्तर इस संख्या में वृद्धि होती जा रही है। उनके माध्यम से महर्षि की विचारधारा का आशातीत प्रचार–प्रसार भी हुआ।

स्वामी जी के अवसान के बाद 5 वर्ष के अन्दर ही आर्य समाजियों में विचार–वैविध्य के कारण अन्तर्विरोध आरम्भ हो गया। परिणामतः पंजाब की आर्यसमाजों का एक वर्ग तो आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से आबद्ध रहा तो दूसरे ने आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के नाम से एक पृथक् संगठन बना लिया। यही स्थिति दिल्ली में बनी हुई है। तथापि दोनों वर्ग कुछ समय तक अपने–अपने ढंग से महर्षि दयानन्द के मिशन को आगे बढ़ाने में लगे रहे। इस कार्य के लिए आर्यसमाज ने देश को अनेक उच्च कोटि के उपदेशक, व्याख्याता, शास्त्रार्थ महारथी, उद्भट वैदिक विद्वान् दिये, जिन्होंने अपनी ओजस्वी वाणी, तर्कणा शक्ति और लेखनी से महर्षि के मन्तव्यों के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। यह स्थिति देर तक नहीं बनी रही। समय ने करवट ली। आर्यसमाज में दलगत राजनीति, क्षेत्रवाद एवं सत्तालोलुपता की प्रवृत्ति ने प्रवेश करना आरम्भ कर दिया। प्रचार–प्रसार का कार्य चन्द उपदेशकों तक ही सीमित रहा। अधिकांश लोग 'अखाड़ेबाजी' में तल्लीन रहे। प्रथम चरण में पंजाब इसका मुख्य केन्द्र रहा। पंजाब दो राज्यों हरियाणा और पंजाब रूप में विभक्त हुआ, जिसका प्रभाव सभा पर पड़ना स्वाभाविक ही था। काफी जद्दोजहद के बाद पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा तीन सभाओं में बंट गई–हरियाणा, दिल्ली और पंजाब। जद्दोजहद का प्रमुख कारण सत्तालोलुपता ही था, जिसके कारण कोर्ट–कचहरी और मुकदमेबाजी तक की

शेष पृष्ठ 05 पर ☞

उत्कृष्ट शंका समाधान

● स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

शंका– ईश्वर निराकार है, तो योग द्वारा ईश्वर का किस रूप में साक्षात्कार होता है?

समाधान– ईश्वर निराकार है, तो निराकार स्वरूप में ही ईश्वर का साक्षात्कार होता है। अगर लाल टोपी होगी, तो किस रंग की दिखाई देगी? लाल दिखेगी। इस तरह से जो वस्तु जैसी होगी, ठीक वैसी वो साक्षात्कार के समय दिखती है। ईश्वर निराकार है, तो निराकार दिखाई देगा। आनंद स्वरूप है, आनंद स्वरूप दिखाई देगा, अर्थात् उसकी वैसी अनुभूति होगी। उसकी आकृति– (शेप) दिखाई नहीं देगी। ईश्वर की आकृति तो है ही नहीं। बिना आकृति के ही, उसकी अनुभूति ही, उसका साक्षात्कार है। साक्षात्कार का नियम यह है, कि– जिस–जिस द्रव्य में, जो–जो गुण होते हैं, उन्हीं गुणों के माध्यम से, उस–उस द्रव्य का साक्षात्कार होता है। नीला वस्त्र नीले रंग का और पीला वस्त्र पीले रंग का दिखाई देगा। यही उसका साक्षात्कार है। अब प्रारम्भिक स्तर पर योगी भी आंख खोलकर ईश्वर साक्षात्कार नहीं कर सकता। पहले–पहले योगी को भी आंख बंद करके ही अभ्यास करना पड़ता है। और फिर लंबे–काल तक अभ्यास करके वो इतना कुशल हो जाता है, कि आंख खोलकर भी वह सर्वव्यापक ईश्वर का अनुभव कर सकता है। आंख खुली रहेगी, आंख से उसको बाहर का दृश्य दिखाई नहीं देगा। वो ईश्वर को देखेगा। कभी–कभी सामान्य व्यक्ति भी ऐसा अनुभव करता है। जैसे कि– एक व्यक्ति आँख खोलकर बैठा था। उसके सामने से एक दूसरा व्यक्ति निकल गया। लोग पूछते हैं– 'यह कौन कौन गया? वह बोला, पता नहीं साहब। अरे! आप तो आंख खोलकर बैठे थे, आपको पता नहीं चला? उसने कहा, बिल्कुल पता नहीं चला। आँखे भले ही खुली थी। मैं आंख के साथ नहीं था, मैं कहीं और था। सोच कुछ ओर रहा था। इसलिए कौन सामने से निकल गया, मुझे पता ही नहीं चला। तो ऐस ही कुशल योगी व्यक्ति, आँख भले खोलकर रखे, पर वो आंख से देखता नहीं। अर्थात् ईश्वर का अनुभव करता है।

शंका– वेद की उत्पत्ति कैसे हुई?

समाधान– आदि सृष्टि में भगवान ने चार ऋषियों को चार वेदों का ज्ञान दिया। **पहले धरती से वनस्पतियाँ, कीड़े–मकोड़े तैयार हुए, बाद में मनुष्य उत्पन्न हुए। इनमें भी जो सबसे अधिक बुद्धिमान थे, उनका नाम था ऋषि। इन चार ऋषियों के नाम थे– 1. अग्नि, 2. वायु, 3. आदित्य, 4. अंगिरा। इन चार में से एक–एक ऋषि ऋषियों को ईश्वर ने एक–एक वेद का ज्ञान दिया।**

ईश्वर सर्वव्यापक (Omnipresent) है। वह ऋषियों के हृदय में भी था। आपको अपने ही अन्दर कुछ बातचीत करनी है, कुछ योजना बनानी है, तो बिना जबान हिलाये, मन में शब्दोच्चारण कर सकते हैं। उन चार ऋषियों के अन्दर बैठे हुए ईश्वर ने चार ऋषियों को वेद का ज्ञान दे दिया। जैसे आपको अपने आपसे बात करने के लिए चमड़े की जबान की जरूरत नहीं पड़ती, वैसे ही अपने अन्दर बात करने के लिए ईश्वर को बाहर से कान में बोलने की जरूरत नहीं पड़ती।

चार ऋषियों ने ईश्वर से मंत्र सीख लिये। उनके अर्थों का चित्र भी देख लिया। जिस तरह सिनेमा में पर्दे पर चित्र देखते हैं, उसी तरह मन रूपी पर्दे (स्क्रीन) पर आँख बंद करके सारे अर्थ समझ लिये।

जैसे वेद में कहा है– खेती करो। खेती कैसी करें, उसकी पिक्चर भगवान ने मन रूपी स्क्रीन पर बनाई। जैसे आप टेलिविजन में देखते हैं– हल बनाना, हल को बैल से जोड़ना, हल चलाना, फिर पानी डालना, घास काटना, फसल काटना।

अगर भगवान यह पिक्चर नहीं दिखाते, सिर्फ वेद मंत्र पढ़वाते, मंत्र रटाते, उसका शाब्दिक अनुवाद करवाते तो भी इतने मात्र सिखाने से बात समझ में नहीं आती, जब तक कि उसका चित्र अर्थ सहित नहीं समझाया जाये। जैसे कि कक्षा में बच्चे को जब क, ख, ग सिखाते हैं। "क" से कबूतर अपने बच्चे को रटाते हैं। फिर कबूतर लिखकर बना देते हैं। अगर कबूतर का फोटो नहीं दिखाया तो बच्चा कभी नहीं समझ पायेगा, कि कबूतर किसको कहते हैं। ऐसे ही भगवान ने सूर्य का चित्र दिखा दिया, अग्नि जलती हुई दिखा दी और बता दिया कि यह सूर्य है, यह अग्नि है। और चार ऋषियों की ड्यूटी लगा दी, कि भाई, मैंने तुम्हें सिखा दिया, अब आगे इन हजारों लोगों को तुम सिखाओ। तब से यह पढ़ने–पढ़ाने की परम्परा चल रही है।

– दर्शनयोग महाविद्यालय
रोजड़ (गुजरात)

☞ पृष्ठ 04 का शेष

महर्षि दयानन्द और...

नौबत आ गई। यहाँ से शुरू हुई जंग का कुप्रभाव धीरे–धीरे अधिकांशतः प्रान्तों की सभाओं पर पड़ा, जिसका परिणाम है कई जगह दो–दो समान्तर सभाओं का बनना। दोनों सभाओं के अधिकारी स्वयं को वास्तविक सभा का अधिकारी होने को दावा करते हैं। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा भी इससे अछूती नहीं रही। जिस सभा को प्रान्तीय प्रतिनिधि सभाओं या अन्य समाजों के विवाद का निपटारा करने का दायित्व स्वामी जी ने सौंपा था, जब वही विवादों के घेरे में आ जाये तो अन्य सभाओं, समाजों पर नियन्त्रण करने की आशा कैसे की जा सकती है आज यही स्थिति है।

उत्तर प्रदेश तथा अन्य कई राज्यों में दो समान्तर सभाएं बनी हुई हैं तथा उनके अधिकारी अपना वर्चस्व प्रदर्शित करने में लगे हुए हैं। विगत कुछ वर्षों से सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा भी एकाधिक हैं– सभी पक्षों के अधिकारी स्वयं को 'असली सभा' का अधिकारी सिद्ध करने के लिए न्यायालयों की शरण में हैं। इस सबका कुप्रभाव प्रांतीय प्रतिनिधि सभाओं, आर्यसमाजों, सभाओं एवं आर्यसमाज से सम्बद्ध संस्थाओं के कामकाज पर पड़ना स्वाभाविक है। गुरुकुल कांगड़ी और उससे सम्बद्ध संस्थाएं इसका ज्वलंत उदाहरण हैं। इसी अखाड़ेबाजी के कारण गुरुकुल कांगड़ी, गुरुकुल फार्मेसी और कन्या गुरुकुल देहरादून पर रिसीवर बैठ गये हैं। साथ ही गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय को सभाओं की राजनीति से मुक्त कर सरकार के हवाले करने का षड्यंत्र चल रहा है। यह एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है और उसके लिए सम्बन्धित पक्षों को इतिहास कभी क्षमा नहीं करेगा। साथ ही इसके साथ स्वामी श्रद्धानन्द की आत्मा चीत्कार कर रही होगी। व्यक्ति तो आते–जाते रहते हैं, संस्था को तो बने रहना है, हानि या बदनामी संस्था की ही होती है। आर्यसमाज का जो मुख्य कार्य है– वैदिक सिद्धान्तों एवं मन्तव्यों का प्रचार, कुरीतियों का निवारण, शुद्धि, दलितोद्धार आदि, वह बाधित हो रहा है। कारण स्पष्ट है– नेतृत्व का सारा ध्यान कुर्सी–दौड़, प्रतिस्पर्धा में विजयश्री प्राप्त करने में लगा रहता है। महर्षि के मिशन से उसे कुछ लेना–देना नहीं। कैसे कुर्सी हथियाई जाये और उस पर कैसे बना रहा जाये, यही उनकी चिन्ता का विषय होता है। जो इस प्रतियोगिता में सहभागिता से सदा दूर रहते हुए आर्यसमाज की प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिए चिन्तित हैं उनकी संख्या इतनी कम है कि उनकी आवाज 'नक्कारखाने में तूती की आवाज' की तरह निष्फल हो रही है।

इस भयावह स्थिति में विकल विद्वतमण्डल, माननीय संन्यासियों एवं अन्य हितेच्छु आर्यजनों द्वारा समस्या के समाधान के लिए दोनों पक्षों के समक्ष सुझाव रखे जा रहे हैं, पर सब व्यर्थ, क्योंकि इसके लिए निजी स्वार्थों का त्याग करना पड़ेगा जो किसी के लिए संभव नहीं है। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के एकीकरण के लिए कुछ वर्ष पूर्व एक संचालन समिति बनायी गयी थी, जिसके अध्यक्ष एवं सदस्य आर्यजगत् के जाने माने संन्यासी थे। पर वह भी निष्प्रभावी रही। ऋषि बोधोत्सव, ऋषि निर्वाण दिवस आदि पर महर्षि का नाम स्मरण करने तथा गुणगान करने मात्र से ही अपने कर्तव्यों की इतिश्री मानते हैं, आज के अधिकांश आर्यजन। ऋषि द्वारा स्थापित आर्यसमाज का वर्तमान और भविष्य क्या होगा, प्रचार सम्बन्धी कार्य जैसा अपेक्षित है, वैसा हो रहा है या नहीं, इसकी किसी को चिन्ता नहीं है। आर्यसमाज के कार्य के लिए न तो कोई ठोस कार्य–योजना बनाने वाला है और यदि बन भी जाये तो उसे क्रियान्वित करने में किसी की रुचि नहीं हैं।

हमें आज याद आते हैं वे ज्ञात–अज्ञात आर्यजन जिन्हें सोते–जागते, उठते–बैठते आर्यसमाज के प्रचार की ही चिन्ता थी। उन्हीं लोगों की अनगढ़ नींव के पत्थरों पर आज के आर्यसमाज का गौरवशाली स्वरूप अपनी भव्यता के साथ टिका हुआ है। उन्हीं लोगों के त्याग, तपस्या और समर्पण भाव से किया गया भूतकाल का कार्य वर्तमान में आर्यसमाज के जीवन का आधार है। पर इसका भविष्य क्या होगा, यह हम सभी के क्रियाकलापों एवं निष्ठा पर आधारित होगा। अतः समय की पुकार है कि आर्यसमाज से किसी न किसी रूप से जुड़े हुए आर्यजन निःस्वार्थ भाव से इसकी सर्वतोमुखी उन्नति एवं महर्षि के साधनों के अनुरूप इसे आगे बढ़ाने के लिए अपना तन–मन–धन समर्पित करने को सन्नद्ध हो जायें और अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए आर्य समाज के भविष्य से खिलवाड़ करने वालों को ऐसा करने से रोकें, भले ही इसके लिए आन्दोलन ही क्यों न करना पड़े। परमात्मा हम सबको सद्बुद्धि दे ताकि हम इस दिशा में चिन्तन कर कुछ कर सकें।

–217, आर्य विरक्त (वानप्रस्थ+संन्यास आश्रम,
ज्वालापुर–249407, हरिद्वार

भारत के इतिहास में कुछ अन्धविश्वास पूर्ण भ्रान्तियाँ

● खुशहाल चन्द्र आर्य

हमारे देश का प्राचीन इतिहास बड़ा महान् और गौरवशाली रहा है। श्रीराम जैसा चरित्रवान् और मर्यादावादी, श्रीकृष्ण जैसा महान कूटनीतिज्ञ, भीष्म जैसा ब्रह्मचारी, अर्जुन जैसा धनुषधारी, भीम जैसा बलवान, महात्मा बुद्ध और महावीर जैसा अहिंसावादी, महर्षि दयानन्द जैसा मानव हितकारी व वैदिक विद्वान आपको विश्व में ढूढ़ने से भी नहीं मिलेगा। इसी प्रकार भारत के इतिहास का एक दूसरा कमजोर पक्ष भी है, वह यह है कि भारत के इतिहास में अन्धविश्वास पूर्ण, असम्भव, तर्क, बुद्धि व विज्ञान के विरुद्ध नियम के विपरीत बातें व घटनाएँ भी भरी पड़ी हैं, जिनमें कुछ घटनाओं व बातों का वर्णन यहां इस लेख में कर रहे हैं।

1–हनुमान, सुग्रीव आदि बन्दर नहीं थे:– रामायण काल में हनुमान, बाली, सुग्रीव, अंगद आदि जिन्होंने श्रीराम को विजय दिलवाने में अत्यधिक सहायता की उनका जीवन भी वीरता, बुद्धिमत्ता व स्वामी भक्ति से भरा पड़ा था, फिर भी भारत के मूर्ख इतिहासकारों ने उनको बन्दर जाति की संज्ञा दे रखी हैं जो बिल्कुल झूठी और मनघड़न्त बात है। सच्चाई यह है कि उस समय जो लोग जंगलों व पहाड़ों में रहते थे उनको वानर जाति से सम्बोधित करते थे। वैसे वे अन्य पुरुषों की तरह केवल पुरुष ही नहीं थे बल्कि अति विद्वान् बुद्धिमान, बलवान व स्वामी भक्त भी थे। वे भी गृहस्थी रहते हुए एक दूसरे के दु:ख–सुख के साथी बन कर राजा–प्रजा के रूप में नियन्त्रित रहते थे। जैसे वर्तमान में बँगाल में एक नाग जाति है। वे नाग (साँप) नहीं हैं, अन्य मनुष्यों की भाँति मनुष्य ही हैं। इसी प्रकार उस समय जो लोग जंगल व पर्वतों पर रहते थे उनको वानर बोला जाता था। वे भी बन्दर न होकर मनुष्य ही थे। पर अन समझ लोगों ने उस जाति के लोगों को बन्दर मान लिया और उनके शरीर की बनावट भी पूँछ व बन्दर जैसा चेहरा बनाकर बन्दर का ही रूप दे दिया, परन्तु यह बिल्कुल सफेद झूठ है। हनुमान, बाली, सुग्रीव अंगद आदि बन्दर नहीं मनुष्य ही थे। यदि बन्दर होते तो उनकी स्त्रियाँ भी बन्दरी होती, परन्तु बाली की धर्मपत्नी तारा को अति सुन्दर व पतिव्रता स्त्रियों में माना गया है। इससे सिद्ध होता है कि वे बन्दर नहीं बल्कि मनुष्य थे। रामायण की एक घटना से यह और भी अधिक सुस्पष्ट हो जाती है। यह घटना हसी भाँति है। जब श्रीराम और लक्ष्मण, सीता जी की खोज में इधर–उधर भटक रहे थे, सुग्रीव जो हनुमान जी के साथ ऋषिमूक पर्वत पर बैठा हुआ था, उसने श्रीराम और लक्ष्मण को वनवासी वेष में अपनी ओर आते देखा तो इस भय से कि कहीं ये मेरे बड़े भ्राता बाली के भेजे हुए कोई गुप्तचर तो नहीं हैं। ये जानकारी करने के लिए सुग्रीव ने हनुमान जी को उनके पास भेजा। जब हनुमान जी ने श्रीराम और लक्ष्मण से यहाँ घूमने का कारण पूछा तक हनुमान जी की पूछने की शैली व भाषा इतनी शिष्ट व शुद्ध थी जिनको सुनकर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा कि ये व्यक्ति मुझे चारों वेदों का विद्वान जान पड़ता है कारण इससे हमारी काफी लम्बी बातचीत हुई, इन्होंने कहीं पर भी बोलने में व्याकरण की अशुद्धि नहीं की और बहुत ही शिष्ट भाषा में बातें की हैं। इनकी बातों का मेरे ऊपर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा है। इससे यह सिद्ध होता है कि हनुमान जी बन्दर नहीं थे बल्कि वेदों के विद्वान और एक अति सभ्य व्यक्ति थे। ऐसे वैदिक विद्वान् लोगों को बन्दर बताना, उनका ही नहीं अपना भी अपमान है।

2–हनुमान जी का बालकपन में सूर्य को मुख में रख लेना:– हमारे पौराणिक भाई कहते भी है और हनुमान चालीसा में पढ़ते भी है कि हनुमान जी ने बालकपन में सूर्य को मुख में रख लिया था जिससे पूरे विश्व में अन्धेरा छा गया था। यह बात बुद्धि, तर्क व विज्ञान के विरुद्ध है। ऐसी बातों से हमारे इतिहास का गौरव नहीं बढ़ता बल्कि मूर्खता जाहिर होती है। सूर्य पृथ्वी से तेरह हजार गुणा बड़ा है और पृथ्वी से कितना दूर है और कितना गर्म है इसलिए हनुमान जी का सूर्य को मुख में रख लेना बिल्कुल असम्भव है तथा मिथ्या है। ऐसी असम्भव बातें केवल हमारे पौराणिक भाई ही कहते है ऐसी बात नहीं मुस्लिम भाई भी कहते हैं कि हमारे पैगम्बर मोहम्मद साहब ने चान्द के दो टुकड़े अपनी ऊँगली से कर दिये। ऐसी बातें पूर्णतः असम्भव हैं, इनके ऊपर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए।

3–कुन्ती का पुत्र कर्ण कान से उत्पन्न हुआ था:– यह भी कहा जाता है कि कर्ण कुंती के कुँवारी के हुआ था और अपनी इज्जत बचाने के लिए कुन्ती कर्ण को एक डिब्बा में बन्द करके किसी नदी में बहा दिया। वह बहता हुआ दुर्योधन के किसी सेवक के हाथ लग गया, वह उस डिब्बे को दुर्योधन के पास लाया और दुर्योधन ने कर्ण को अपने छोटे भाई के समान पालन–पोषण किया और बड़ा होने पर वह बड़ा वीर, धनुषधारी व दानवीर बना और महाभारत में दुर्योधन की तरफ से बड़ी बहादुरी से लड़ा। यह घटना सच हो सकती है कोई असम्भव नहीं। परन्तु यह कहना कि कर्ण सूर्य का पुत्र था और कुन्ती के कान से पैदा हुआ था, यह बात सरासर झूठ है कारण प्रकृति के नियम के विरुद्ध कोई कभी नहीं हो सकता। हमें इस प्रकार के अन्धविश्वास को कभी नहीं मानना चाहिए।

हमारे देश का प्राचीन इतिहास बड़ा महान् और गौरवशाली रहा है। श्रीराम जैसा चरित्रवान् और मर्यादावादी, श्रीकृष्ण जैसा महान कूटनीतिज्ञ, भीष्म जैसा ब्रह्मचारी, अर्जुन जैसा धनुषधारी, भीम जैसा बलवान, महात्मा बुद्ध और महावीर जैसा अहिंसावादी, महर्षि दयानन्द जैसा मानव हितकारी व वैदिक विद्वान आपको विश्व में ढूढ़ने से भी नहीं मिलेगा। इसी प्रकार भारत के इतिहास का एक दूसरा कमजोर पक्ष भी है, वह यह है कि भारत के इतिहास में अन्धविश्वास पूर्ण, असम्भव, तर्क, बुद्धि व विज्ञान के विरुद्ध नियम के विपरीत बातें व घटनाएँ भी भरी पड़ी हैं, जिनमें कुछ घटनाओं व बातों का वर्णन यहां इस लेख में कर रहे हैं।

4–सीता, राजा जनक के हल जोतते समय जमीन से निकली थी:– पौराणिक भाईयों का यह कहना कि सीता, राजा जनक के हल जोतते समय जमीन में गढ़ी हुई मिली। यह बात भी सरासर झूठ मालूम होती है। इसके पीछे सच्चाई यह है कि हल के नीचे जो फाली लगती है जो जमीन को फाड़ती है, उस फाली को संस्कृत में सीता कहते हैं। बस! इसी से यह भ्रान्ति फैलाई गई है कि सीता जमीन से निकली थी। राजा जनक को जमीन जोतनी पड़े, यह भी असम्भव जान पड़ता है।

5–श्रीराम ने सूर्पनखा खाँ की नाक काट ली:– रामायण में ऐसी घटना आती है कि जब श्रीराम, लक्ष्मण, सीता के साथ चौदह वर्ष का वनवास काट रहे थे तब रावण की बहन सूर्पनखा ने श्रीराम की सुन्दरता देख उनसे विवाह करने का अपना प्रस्ताव रखा। श्री राम ने यह कहकर इन्कार कर दिया कि मेरे साथ मेरी धर्मपत्नी सीता है, पर लक्ष्मण के पास उसकी धर्मपत्नी नहीं है उससे निवेदन करो। जब वह लक्ष्मण के पास गई, तो लक्ष्मण ने उसे माता जी कह कर सम्बोधित किया और प्रस्ताव को नामंजूर कर दिया। तब कहने वाले तो कहते है कि जब दोनों तरफ से इन्कार हो गया तो श्रीराम ने सूर्पनखा की नाक काट ली। पर यह न समझने की बात है। श्रीराम जैसा आदर्श और मर्यादा का पालन करने वाला व्यक्ति किसी औरत की नाक काट लेवे। इसके पीछे सच्चाई यही है कि किसी की बात न मानना ही उसकी नाक काटना है। यह कहावत इस पर लागू होती है।

6–द्रोपदी के चीर हरण के समय श्रीकृष्ण ने चीर को बढ़ा दिया:– जैसा कि महाभारत में यह घटना आती है कि युधिष्ठिर ने दुर्योधन के मामा शकुनी के साथ जूँआ खेलने में पूरा राज्य हरा दिया, तब अन्त में उसने द्रोपदी को भी दाव पर लगा दिया और हारने से द्रोपदी भी दुष्ट दुर्योधन के कब्जे में आ गई। दुर्योधन ने अपने छोटे भाई दुस्सासन से द्रोपदी के कपड़े उतारते हुए खींच कर लाने को कहा। जब दु:शासन द्रोपदी का चीर हरण कर रहा था और उसे निर्वस्त्र करना चाहता था, उस समय द्रोपदी ने श्रीकृष्ण से अपनी लाज बचाने की प्रार्थना की और श्रीकृष्ण ने उसका चीर इतना बढ़ा दिया कि वह दु:साशन से निर्वस्त्र नहीं हो सकी। यह बात सुनने में तो बहुत अच्छी लगती है, पर सृष्टि नियम के विरुद्ध है। कपड़ा जितना बड़ा होगा उतना ही रहेगा। उसमें बिना जोड़े बढ़ा नहीं सकते। इसमें सच्चाई यह है दुर्योधन श्रीकृष्ण के स्वभाव से परिचित था। वह जानता था कि यदि मैंने द्रोपदी को नग्न कर दिया, श्रीकृष्ण जहाँ कहीं पर भी होगा, वह सुनते ही आयेगा और हम सब को जान से मार देगा। इसलिए दुर्योधन ने श्रीकृष्ण के भय से केवल इतना ही किया कि द्रोपदी को दु:साशन से खिंचवाकर सभा में ले आया, जहाँ दादा भीष्म, गुरु द्रोण, गुरु कृपाचार्य आदि सभी बैठे थे। उसे निर्वस्त्र नहीं किया। दुर्योधन को यह भी भय था कि कृष्ण किसी कारणवश अब नहीं आया तो वह जब भी आयेगा तभी हमें मारे बगैर नहीं रहेगा। इसलिए उसने द्रोपदी का चीरहरण करवाया ही नहीं। सभा में खिंचवा कर जरूर लाया। परन्तु श्रीकृष्ण के अन्य भक्तों ने श्रीकृष्ण को भगवान का अवतार बताने के लिए चीर बढ़ा दिया वाली असम्भव बात जोड़ दी।

C/O गोविन्दराम आर्य एण्ड सन्स,
180 महात्मा गान्धी रोड
(दो तल्ला) कोलकाता–700007

श्रीकृष्ण योगेश्वर हैं परमेश्वर नहीं

● डॉ. जयदत्त उप्रेती

यह सर्वविदित है कि भगवद्गीता नामक विश्वविख्यात पुस्तक कोई स्वतंत्र ग्रन्थ न होकर महर्षि कृष्णद्वैपायन अपरनाम बादरायण "वेदव्यास" रचित महान् ऐतिहासिक महाकाव्य अष्टादश पर्वात्मक महाभारत ग्रन्थ के अन्तर्गत भीष्मपर्व के 25वें पर्व से 42वें पर्व अर्थात् अट्ठारह अध्यायों और 740 श्लोकों वाला एक हिस्सा है। अतः यह भगवद् गीता नामक पुस्तक वस्तुतः मूल महाभारत (जो कि वर्तमान में लगभग एक लाख श्लोकों का विशाल ग्रन्थ है) का ही एक अंश है, यह निर्विवाद सत्य है।

इस गीता का धार्मिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत बड़ा महत्व है, जबकि ऐतिहासिक दृष्टि से तो इतना ही उसके आरम्भिक श्लोकों से जाना जाता है कि जब कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में कौरवों और पाण्डवों की विशाल सेनायें आमने–सामने युद्ध के लिए तैयार थीं तब कृष्ण को अपना सारथी बनाया हुआ रथारूढ़ अर्जुन श्रीकृष्ण से कहने लगा कि भगवन् मैं तो विपक्षी दुर्योधन की सेनाओं की ओर से युद्ध के लिए समुद्यत अपने गुरु द्रोणाचार्य और पितामह भीष्म जैसे पूज्य महारथियों को नहीं मार सकता, यदि मारूँगा तो महान् पाप का भागी बनूँगा, जो कि मुझे कदापि इष्ट नहीं है। तब श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हुए कहते हैं कि यह तो धर्म की रक्षा और अधर्म के विनाश के लिए युद्ध हो रहा है। तुम क्षत्रिय हो, क्षत्रिय का धर्म युद्धक्षेत्र में दैन्यभाव दिखाना और पलायन करना उचित नहीं है, प्रत्युत शत्रुओं को मारना ही धर्म है। आत्मा की अनश्वरता और शरीरादि की नश्वरता का तथा अन्य भी अनेक धार्मिक और आध्यात्मिक विषयों का ज्ञानोपदेश अर्जुन को गीता के इन अठारह अध्यायों में जब श्री कृष्ण दे चुके तब अन्त में अर्जुन ने उनसे कहा– **"नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत। स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।।"** (गीता 18–73) अर्थात् हे कृष्ण! आपकी कृपा से मेरा अज्ञान नष्ट हो गया है, मुझे स्मृति प्राप्त हो गई है, सारा सन्देह मिट गया है, अतः अब आपकी आज्ञानुसार युद्ध करूंगा।

गीताकार के मत में कृष्ण कोई साधारण मनुष्य न होकर उच्चकोटि के विद्वान् और योगी थे। यदि वे योगी न होते तो अपने पूर्वजन्मों की घटनाओं को कैसे जान सकते थे। जबकि गीता के चतुर्थ अध्याय के आरम्भ में कृष्ण ने अर्जुन को बतलाया है कि इस अविनाशी योग को मैंने पूर्वजन्म में विवस्वान् को बताया, फिर विवस्वान् ने मनु को और मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु को बतलाया और इस प्रकार परम्परा से अनेक राजर्षियों तक पहुँचते–पहुँचते काल के प्रभाव से वह नष्ट हो गया था, जिसे इस जन्म में पुनः तुम्हें उपदिष्ट कर रहा हूँ। जब अर्जुन ने प्रश्न किया कि महाराज आपका जन्म तो अब हुआ है और विवस्वान् तो युगों पूर्व पैदा हुए तब यह कैसे सम्भव है कि आपने उन्हें योग की शिक्षा दी थी? इस पर कृष्ण ने कहा कि अर्जुन तेरे और मेरे बहुत जन्म हो चुके हैं, उन्हें मैं तो योगबल से जान लेता हूँ परन्तु तुम नहीं जान सकते। मैं आत्मरूप से अजन्मा और अविनाशी होते हुए और सूक्ष्म–स्थूल भूतों को स्वाधीन (अपने वश में) कर लेने पर तथा अपनी प्रकृति को भी अपने वश में करके जन्म लिया करता हूँ, अपनी माया से। (गीता, 4–1..6) यहाँ पर माया शब्द से श्रीकृष्ण का क्या अभिप्राय है यह विचारणीय है। माया शब्द का अर्थ वैदिक निघण्टु में "प्रज्ञा" किया गया है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में माया का अर्थ सत्वरजस्तमोमयी प्रकृति कहा गया है– **"मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्"** (श्वे. उप., 4–10)।

यहाँ पर स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती (पूर्वनाम पं. बुद्धदेव विद्यालंकार) गीता समर्पण भाष्य में आत्ममायया शब्द से यह अभिप्राय दर्शाते हैं–

"योगदर्शन का सूत्र है– **"भोगापवर्गार्थम् दृश्यम्"** अर्थात् प्रकृति के दो उद्देश्य हैं– एक जीवों को नाना प्रकार के भोग दिलाना, जब तक जीवात्मा में सूक्ष्म से सूक्ष्म भी भोगवासना रहेगी तब तक भोगार्थ जन्म होगा। परन्तु जब जीवात्मा अपनी कैवल्यावस्था में अर्थात् शुद्ध अपनेपन में पहुँच जाता है, तब नाना नैमित्तिक कारणों से दबी हुई स्वाभाविक परोपकार की इच्छा शुद्ध रूप में प्रकट होती है और वह भगवान् से प्रार्थना करता है कि हे भगवन्। आपकी कृपा से लब्ध इस पवित्र मार्ग का मैं कब अन्य सब जीवों को उपदेश करूँ, तब भगवान् अवधि की समाप्ति पर उसे अवसर देते हैं कि अपनी परोपकारेच्छा की पूर्ति के लिए उचित स्वयम् प्रार्थित स्थान में जन्म ले। इसी परोपकारेच्छा से प्राप्त जन्म को आत्ममाया–जन्य जन्म कहा है। सो मैं वहाँ अपनी निर्माण शक्ति से जन्म लेता हूँ।"

इसके आगे गीता का यह प्रसिद्ध श्लोक और इसका अर्थ भी स्वामी समर्पणानन्द के शब्दों में दर्शनीय है–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।। (गीता, 4–7, 8)

हे भारत! जब जब धर्म की ग्लानि होती है तथा अधर्म का अभ्युत्थान होता है तब तब मैं अपनी सृष्टि करता हूँ। अर्थात् लोक–कल्याणार्थ परमात्मा से माँग कर मैं जन्म लेता हूँ।... उत्तम उद्देश्य की पूर्ति में लगे हुए साधु पुरुषों की रक्षा के लिए.... तथा दुःखदायी कर्मों से प्रवृत्त दुष्टों के विनाश के लिए अतएव धर्म की स्थापना के लिये मैं युग युग में जन्म लेता हूँ (तथा इसी प्रकार मदुपलक्षित अन्य मुक्त जीव भी स्वेच्छया जन्म लेते हैं।)

इन श्लोकों में कृष्ण का वर्तमान जन्म, मुक्त जीव की मुक्ति अवधि पूर्ण होने पर अथवा स्वेच्छा से जन्म लेने की बात को दर्शाया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि कृष्ण मुक्ति से लौटे हुए व्यक्ति थे। सम्भव है, ऐसे ही त्रेता युग के रामचन्द्र जो दशरथनन्दन राजा राम के रूप में जग में प्रसिद्ध हुए, वे भी इसी प्रकार मुक्ति से लौटे हुए पवित्र आत्मा रहे हों।

इन श्लोकों में कृष्ण का वर्तमान जन्म, मुक्त जीव की मुक्ति अवधि पूर्ण होने पर अथवा स्वेच्छा से जन्म लेने की बात को दर्शाया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि कृष्ण मुक्ति से लौटे हुए व्यक्ति थे। सम्भव है, ऐसे ही त्रेता युग के रामचन्द्र जो दशरथनन्दन राजा राम के रूप में जग में प्रसिद्ध हुए, वे भी इसी प्रकार मुक्ति से लौटे हुए पवित्र आत्मा रहे हों।

यहाँ पर विचारणीय है कि क्या जो ईश्वर समस्त जगत् का रचयिता, धारक और संहारक है, जो वेदों के द्वारा मनुष्यादि जीवों के उद्धारार्थ, अभ्युदय और उनके निश्श्रेयस हेतु सृष्टि के आरंभ में ही ज्ञान प्रदान करता है, और स्वयम् अजन्मा, अनादि, अविनाशी, अशरीरी, निराकार, निर्विकार, सर्वज्ञ, सर्वगत, विभु, सर्वान्तर्यामी, नित्य, पवित्र और सर्वशक्तिमान् है, क्या वह कभी एकदेशी होकर राम, कृष्ण आदि के रूप में जन्म ले सकता है? सब प्राणियों के भीतर और बाहर सदा विद्यमान रहने वाले सूक्षम से सूक्ष्म और महान् से महान् उस ईश्वर को ऐसी कौन सी कमी या आवश्यकता है, जो वह जन्म–मरणादि कष्टों से युक्त मानव के छोटे से शरीर में जन्म ले? कदापि नहीं। लगता है इन महापुरुषों की अतिशय प्रेमभक्ति में मग्न होकर सर्वगुणसम्पन्न ईश्वर के रूप में किन्हीं कवियों ने कल्पना करके उन्हें ईश्वरावतार कह डाला और बाद के कुछ लोगों ने उनकी बात को वास्तविक मान लिया, जो कि तर्क की कसौटी की भ्रान्ति सिद्ध होती है क्योंकि न वेदों में, न 11 उपनिषदों में और न छः आस्तिक दर्शनों में इस प्रकार के ईश्वरावतारों का कहीं न वर्णन है न कहीं प्रतिपादन ही है।

गीता में अन्यत्र कहा गया है–

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मामया।
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत। तत्प्रसादात्
परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यति शाश्वतम्।

अर्थात् शरीर रूप यन्त्र में आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को सर्वान्तर्यामी परमेश्वर अपने ज्ञान से उनके कर्मों के अनुसार भ्रमण कराता हुआ सबके हृदय में स्थित रहता है। अतः हे अर्जुन तू सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही शरण में जा। उसी प्रकार की कृपा से ही तू परम शान्ति को तथा शाश्वत मोक्षधाम को प्राप्त होगा। (गीता, 18–61, 62) इन श्लोकों के अनुसार स्पष्ट है कि कृष्ण ईश्वर नहीं हैं और ईश्वर कृष्ण से भिन्न है। ये श्लोक कृष्ण के मुख से ही कहलाये गये हैं, गीताकार व्यासदेव जी द्वारा। अन्यथा यहाँ पर **"ईश्वरः सर्वभूतानां हृदये तिष्ठति"** न कहकर **"अहं सर्वभूतानां हृदये तिष्ठामि"** ऐसा कृष्ण की ओर से कहा जाता।

तथापि गीता में अनेक स्थल ऐसे हैं जिनमें श्रीकृष्ण की ओर से कहलाया गया कि ब्राह्मणादि चारों वर्णों की व्यवस्था मेरे द्वारा की गई (वही 4–13), मैं इस सारे जगत् की उत्पत्ति और विनाश का कारण हूँ (वही, 7–6) इत्यादि। जबकि वेदों में परम पुरुष परमेश्वर ही को इस चराचर जगत् का कर्त्ता–धर्त्ता और चारों वर्णों का गुणकर्मानुसार विभाजन करने वाला कहा गया है। (द्रष्टव्य–पुरुषसूक्त, हिरण्यगर्भसूक्तादि) ऐसे श्लोकों में परस्पर विरोधाभास और वदतो–व्याघात सा दृष्टिगोचर होता है, जिससे कोई तो विरोधी श्लोकों को प्रक्षिप्त कह देते हैं, कोई उनकी युक्ति से संगति लगाते हैं। सम्पूर्ण गीता की क्षत्रिय कृष्ण और योगेश्वर कृष्ण परक व्याख्या करने वाले हैं आर्य समाज के महोपदेशक रहे वाग्मिप्रवर स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती (पूर्वनाम पं. बुद्धदेव विद्यालंकार) जिनका लिखा हुआ समर्पण गीताभाष्य प्रसिद्ध है।

विद्वानों की अपनी अपनी जो भी गीता के प्रति अथवा कृष्ण के सम्बन्ध में जो भी धारणा रही हो, इतना तो निश्चित रूप से कहा जाता है कि वे कृष्ण को ऐतिहासिक

शेष पृष्ठ 08 पर ☞

आओ चलें वेद की ओर

● डॉ. बिजेन्द्र पाल सिंह

आर्यसमाज कोई मत, पन्थ या सम्प्रदाय नहीं है। न ही इसका किसी वर्ग विशेष जाति से सम्बन्ध है। आर्यसमाज एक क्रान्ति है जिसमें मानव के उत्थान का प्रकाश है; मानव जाति में सभी आ जाते हैं। सबके शारीरिक, आत्मिक व सामाजिक उन्नति का ज्ञान है। समस्त विश्व की भलाई के उद्देश्य से ऋषि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना की थी अनेक व्यक्ति सोचते हैं कि यह भी ऐसी संस्था है जो गुरुओं, शिष्यों की है जहां तान्त्रिक कर्म, ढोंग, कान में मन्त्र फूँकना जैसे अन्ध विश्वास होते हैं। मेरा कहना है कि पहले आर्ष ग्रन्थों का स्वाध्याय करें, आर्यसमाज के कार्यक्रमों में जाएं तब पता चलेगा आर्यसमाज क्या है। विश्व में आर्यसमाज ही ऐसा आन्दोलन है जो विश्व के श्रेष्ठ निर्माण हेतु कार्यरत है। आर्यसमाजी कांटों पर चलकर अन्यों को फूलों, मखमल के गद्दों पर चलाने के लिए कष्ट सहते हैं और कष्ट सहे हैं, गोलियां खाई हैं। देश की स्वतंत्रता में भी आर्यों का बड़ा योगदान रहा है।

लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानन्द, पं. लेखराम, ऋषि दयानन्द, पं. रामचन्द्र देहलवी जिन्होंने राष्ट्र हेतु, समाज हेतु अपने आपको बलिदान कर दिया और डॉ पट्टाभिसीतारमैया का कांग्रेस का इतिहास उठाकर देखें। वहां दिया है कि देश को स्वतन्त्र कराने में आर्य समाज का अधिकांशतः प्रत्यक्ष रूप से तथा अप्रत्यक्ष रूप से सर्वाधिक योगदान रहा है। पं. घासीराम के अनुसार कुम्भ के मेले के अवसर पर रानी लक्ष्मी बाई, नाना फड़नवीस, तात्यां टोपे, अजीजमुल्ला खां आदि ऋषि दयानन्द से मिले थे और वहां ऋषि दयानन्द ने स्वराज व स्वतंत्रता की चिंगारी उनके हृदयों में प्रज्वलित की थी। आर्य समाज का राष्ट्र रक्षा हेतु बड़ा योगदान रहा है। ऋषि दयानन्द ने समाज से अन्धविश्वास व पाखण्डों को निकालने के लिए उपदेश किए। वह चाहते थे कि समाज की उन्नति तभी सम्भव है जब समाज से कुरीतियां दूर हों, लोग सत्यासत्य का विचार का विचार करें, कहीं पक्षपात अन्याय न हो, परस्पर ईर्ष्या वैमनस्य नहीं हो।

वह चाहते थे कि अन्य मत वाले ईसाई, मुस्लिम, जैनी, बौध, आदि जो सर्वमान्य सत्य है उसे ग्रहण करें और जो परस्पर विरोधी बातें हैं उन्हें निकाल देवें तब विश्व में कहीं भी भेदभाव नहीं होगा, सब प्रीति से रहेंगे, कहीं लड़ाई झगड़े न होंगे।

ऐसा ही संस्कार विषय पर प्रकाश है। गर्भधारण से (निषेक संस्कार) लेकर अन्तिम संस्कार तक सोलह संस्कार बताए हैं जो समय समय पर कर्म करने होते हैं। जैसे–जैसे शिशु या बालक बड़ा होता जाता है उसमें गुणों की वृद्धि हेतु यह संस्कार होते हैं। शारीरिक, मानसिक उन्नति संस्कारों से होती है।

शुद्धि का यही अभिप्राय था कि हम अपनी आत्मा को शुद्ध करें, हमारा मन व वाणी शुद्ध हो जिसके लिए वेद ही मानवोचित धर्म है जो सबके लिए है; जहां कोई पक्षपात नहीं, सत्य व न्याय है, ईर्ष्या द्वेष से रहित है।

जीवन की सुन्दर व्यवस्था है वेद में। सब कुछ नियमानुसार है। आयु को चार भागों में अवस्थानुसार बांटा गया है। ब्रह्मचर्याश्रम जहां शिक्षा, स्वाध्याय, ज्ञानार्जन पर ध्यान दिया गया है। जीवन चलाने हेतु सर्वप्रथम ज्ञान की आवश्यकता है। शिक्षा आवश्यक है इसलिए पढ़ना पढ़ाना आवश्यक है जिसके लिए ब्रह्मचर्याश्रम है। तत् पश्चात गृहस्थाश्रम जिसे महत्वपूर्ण आश्रम माना है। श्रेष्ठ सन्तान का निर्माण इसी आश्रम में होता है। सन्तानों को शिक्षित करना, संस्कार देना तथा समाज व अन्य आश्रमियों की सेवा करना, उनका ध्यान रखना इसी आश्रम का कर्तव्य है और जब सन्तान अपने पैरों पर खड़ी हो, सन्तान के भी संन्तान हो जाय तब वानप्रस्थ और अन्त में सन्यासाश्रम जिसके लिए समस्त समाज व अन्य सभी अपने परिवार की भांति होते हैं। सुशिक्षा का प्रचार, वेद का प्रचार इस आश्रम का मुख्य उद्देश्य है। भर्तृहरि, अश्वपति आदि अनेक उदाहरण हैं, अनेक राजा वृद्ध होने पर सन्यासाश्रम ग्रहण करते थे।

वर्णव्यवस्था पर देखें तो देखेंगे कि कितनी सुन्दर व्यवस्था बनाई है महाराज मनु ने वर्ण व्यवस्था गुण–कर्म–स्वभाव पर मानी है, न कि जन्म के आधार पर मानी। यदि गुरुकुल से युद्ध, अस्त्र–शस्त्र का ज्ञान किया है तो क्षत्रिय, पढ़ने–पढ़ाने का ज्ञान किया तो ब्राह्मण, व्यापार–कृषि–पशुपालन का ज्ञान किया तो वणिक अर्थात् वैश्य एवं अन्य जो पठन–पाठन से रहित हों वह सेवा कार्य करने वाले शूद्र, ऐसी व्यवस्था वैदिक मनीषियों की रही है।

ऐसा ही संस्कार विषय पर प्रकाश है। गर्भधारण से (निषेक संस्कार) लेकर अन्तिम संस्कार तक सोलह संस्कार बताए हैं जो समय समय पर कर्म करने होते हैं। जैसे–जैसे शिशु या बालक बड़ा होता जाता है उसमें गुणों की वृद्धि हेतु यह संस्कार होते हैं। शारीरिक, मानसिक उन्नति संस्कारों से होती है।

वेद सबके सुख के लिए हैं "सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया" इसका उद्देश्य है सृष्टि का सम्पूर्ण ज्ञान वेद में है, सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है और हिन्दू–मुस्लिम–पारसी–ईसाई विश्व का प्रत्येक वर्ग जाति का व्यक्ति वेद पढ़ सकता है, ईश्वरीय वाणी है यह।

आर्य का अर्थ श्रेष्ठ है तथा आर्यत्व से ही संसार में शांति सम्भव है। राम, कृष्ण, रघु, दिलीप, ययाति, भीम, अर्जुन, युधिष्ठिर, राजा भोज सब आर्य ही तो थे। आर्य संस्कृति अत्यन्त प्राचीन है। आर्यों के चक्रवर्ती शासन रहे हैं। उस समय प्रजा अत्यन्त प्रसन्न रहती थी। राजा प्रजा को पुत्रवत समझता था तथा सत्य, न्याय एवं पक्षपात रहित हो शासन करता था। प्रजा भी राष्ट्र के प्रति समर्पित रहती थी। कहीं कोई दुराचार, चोरी, अनाचार जैसा किसी भी प्रकार का दुष्कर्म नहीं होता था। आर्य शासक सदैव सत्याचरण युक्त व न्यायप्रिय रहे हैं। ऋषि ने चक्रवर्ती शासन को महत्व दिया है।

यदि संसार के लोग आज भी वेद मार्ग पर चलें, सत्याचरण करें तो पुनः धरती पर सुखशान्ति की स्थापना हो सकती है। वेद की भावना भी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की है जिसका अर्थ है कि संसार एक परिवार की भांति हो।

संसार को सुखी बनाने हेतु सबको वेद पढ़न–पढ़ाने व वेदानुसार आचरण करना चाहिए। वेद का घर–घर प्रचार करना चाहिए।

गली नं. 2, चन्द्र लोक कॉलोनी
खुर्जा 203131,
मो. 8979794715

☞ पृष्ठ 07 का शेष

श्रीकृष्ण योगेश्वर हैं ...

महापुरुष, अपने समय के श्रेष्ठ ज्ञानी और योगी तथा राजनीतिज्ञ ही मानते हैं, ईश्वर का अवतार या कल्पनाप्रसूत व्यक्ति (पात्र) नहीं। हाँ इस विवेचन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि भागवतपुराण में चित्रित कृष्ण का गोपीजनप्रिय रूप गीताकार या महाभारतकार को बिल्कुल भी अभीष्ट नहीं था, अन्यथा वे उस विषय का भी कहीं न कहीं गीता में उल्लेख अवश्य करते। इससे तो यह जाहिर होता है कि गीता और भागवत पुराण के रचयिता भिन्न भिन्न व्यक्ति हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती भागवतपुराण को व्यासरचित नहीं मानते, जहाँ कि योगेश्वर रूप में गीता में वर्णित उदात्तचरित कृष्ण को (विष्णु का अवतार बतलाने पर भी) गोपियों के साथ रासलीला, आदि प्रसंगों में तुच्छकर्म कर्ता तक दर्शाया गया है। अस्तु।

मुख्य प्रश्न है कि क्या कृष्ण को महर्षि वेदव्यास द्वारा गीता में केवल काव्यात्मक आलंकारिक दृष्टि से गीता के विभूतियोग नामक दशवें अध्याय में और विश्वरूपदर्शन नामक ग्यारहवें अध्याय में सृष्टिकर्ता ईश्वर या ईश्वर का प्रतिनिधि रूप में वर्णित किया गया है, अथवा वे ईश्वर या उसके समकक्ष न होकर ज्ञानकर्मभक्तियोगनिष्ठ महापुरुष मात्र थे? इन पंक्तियों के लेखक की दृष्टि में वास्तविकता तो यह है कि आश्चर्यमय इस जगत् का रचयिता, धारयिता और नाशयिता तो सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म परमेश्वर के अतिरिक्त और कोई हो ही नहीं सकता। इसलिये श्रीकृष्ण भी उसी श्रेणी में या उसके समान सर्वज्ञ, सर्वगत और सर्वशक्तिमान् नहीं हो सकते। ब्रह्मसूत्रकार बादरायण व्यास का इस सम्बन्ध में निम्नांकित सूत्र और उस पर आदिशंकराचार्य का भाष्य इस प्रसंग में सारे सन्देहों का निवारण होने से द्रष्टव्य है। यथा,

"जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसंनिहितत्वाच्च" (ब्र. सूत्र, 4–4–17)..... "जगदुत्पत्यादिव्यापारं वर्जयित्वाऽन्यदणिमाद्यात्मकमैश्वर्यं मुक्तानां भवितुमर्हति, जगद्व्यापारस्तु नित्यसिद्धस्यैवेश्वरस्य। कुतः ? तस्य तत्र प्रकृतत्वादसंनिहितत्वाच्चेतरेषाम्। पर एव हीश्वरो जगद्व्यापारेऽधिकृतः, तमेव प्रकृत्योत्पत्याद्युपदेशात्, नित्यशब्दनिबन्धनत्वाच्च। तदन्वेषणविजिज्ञासनपूर्वकं त्वितरेषामणिमाद्यैश्वर्यं श्रूयते। तेनासंनिहितास्ते जगद्व्यापारे।" (शांकरभाष्यम्, 4–4–17)

अर्थात् जगत की उत्पत्ति–स्थिति–प्रलय, इत्यादि महान् कार्यों को छोड़कर, उससे भिन्न अणिमा, गरिमा, लघिमा इत्यादि रूप जो योगजन्य ऐश्वर्य हैं, उसको प्राप्त करना तो मुक्तात्माओं के लिए संभव है, परन्तु इस विचित्र और महान् जगत् की रचना केवल नित्य सिद्ध ईश्वर के ही सामर्थ्य की बात है। क्योंकि वेदादि शास्त्रों में जगद् की रचना अथवा सृष्टि के निर्माण, रक्षा और विनाश के प्रकरणों में उसी अविनाशी एक ईश्वर का वर्णन है, जो कि सर्वथा प्रामाणिक है। उसी ईश्वर को जानने और प्राप्त करने के लिए अणिमा आदि ऐश्वर्य की चर्चा योगियों के सम्बन्ध में होती है। इसलिए वे जगद् रचनादि कार्य में कभी सक्षम नहीं होते। अतः श्रीकृष्ण योगेश्वर तो कहे जा सकते हैं, परन्तु परब्रह्म परमेश्वर नहीं। इति।

स्वस्त्यायन, तल्ला थपलिया,
अल्मोड़ा– 263601, उत्तराखण्ड।

शिक्षा क्षेत्र में हमारी समस्याएं

● डॉ.अशोक आर्य

मानव जीवन समस्याओं से घिरा हुआ है। इन समस्याओं के समाधान के लिए यह मनुष्य सदा इधर उधर भटकता रहता है। इस प्रकार की ही समस्याओं में विद्यार्थी जीवन की अनेक समस्याओं के अन्तर्गत विद्यार्थियों के अनुशासन की भी एक भयंकर समस्या आज हमारे सामने आ कर खड़ी हुई है। इस समस्या से त्राण पाने के लिए हमारी सरकार, हमारे परिवार, हमारे सम्बन्धी आदि सब प्रयत्न करते हैं, किन्तु परिणाम कुछ भी नहीं निकल पा रहा क्योंकि किसी भी समस्या का निदान तब ही हो सकता है, जब उसके निदान के लिए ठीक दिशा में कार्य किया जावे, उस समस्या के कारण के मूल तक जाया जावे। इस के मूल तक जावें कैसे? इस का उतर वह माता–पिता, जिनका अपनी संतान के लिए उत्तरदायित्व होता है, कहते हैं कि न तो हमारे पास समय ही है और न ही हम इस समस्या का निदान ही जानते हैं। हमने अपने बच्चे को खूब मार पीट कर देख लिया किन्तु वह है कि बुराइयों को छोड़ता ही नहीं। डांटना, मारना, पीटना समस्या का कुछ सीमा तक तो निदान हो सकता है, किन्तु यह स्थाई निदान नहीं है। यदि हम वास्तव में निश्चय ही हमें वेद की शरण में जाना होगा, क्योंकि विश्व की सब समस्याओं का निदान वेद में ही परमपिता ने देकर यह वेद का ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में ही हमें दे दिया था।

हम विद्यार्थियों की जिस अनुशासन सम्बधी समस्या की चर्चा कर रहे हैं, इस समस्या ने हमारे शिक्षाविदों को अत्यधिक परेशान कर रखा है। यह समस्या हमारे शिक्षा शास्त्रियों के लिए अत्यधिक परेशानी का कारण बन गई है। जब हम अपने क्षेत्र में आने वाले समाचार पत्रों पर दृष्टि डालते हैं तो हम पाते हैं कि यह समाचार हमारे विद्यार्थियों के काले कारनामों यथा उद्दंडता, लड़ाई–झगडों आदि, जिन्हें हम अनुशासनहीनता के नाम से जानते हैं, से भरे मिलते हैं, जिसे "प्राचीन भारतीय शिक्षा की एक झांकी" शीर्षक के अन्तर्गत हमारे एक महान् शिक्षाविद् डॉ. महेशचद्र सिघल ने लिखा है, से मिलता है।

डॉ. सिंघल लिखते हैं कि '' आज की शिक्षा प्राचीन शिक्षा से पूर्णतया विपरीत पडती है। न वैसा वातावरण है, न वैसे गुरु और शिष्य ही। अधिकतर विद्यालय नगरों के मध्य दिखाई पड़ते है। जहाँ द्यूत और कोलाहल का बोलबाला है। चारों और चटपटी–चमकीली–भड़कीली वस्तु बेचने वाली दुकाने तथा सिनेमा थियेटरों का दौर दौरा है, जिनकी ओर से आँखें बंद कर लेना सरल काम नहीं है। आज के विद्यार्थी के कानों में चारों और से अश्लील शब्द पड़ते हैं। और उसकी जिहवा पर भी अश्लील गाने चढ़े रहते हैं। वह पुस्तकें भी पढ़ता है तो प्रेम और जासूसी कहानियों वाली, जो पतन की और ले जाने वाली हैं।

आज गुरु शिष्य सम्बन्ध कैसे हैं यह बताने की आवश्यकता नहीं। अध्यापक को अपनी जान बचानी कठिन हो रही है। वह छात्रों से ऐसे ही डरता है जैसे शेर से बकरी। उसके लिए मैनेजर , हैडमास्टर और छात्र ये तीनों ही अफसर हैं। यह वही भारत है जहाँ गुरु को सब से उंचा पद दिया जाता था। लेकिन आज उसकी दशा दयनीय है। पाठक तनिक सोच कर देखें इस अधोगति को।''

(गुरुकुल पत्रिका श्रद्धानंद जन्म शताब्दी अंक , मार्च 1977 ई.)

आज के विद्यार्थी के अन्दर अनुशासनहीनता इस सीमा तक बढ़ गई है कि इसे समझाने के लिए आज हमें किसी प्रकार के उदाहरण आदि देने की आवश्यकता अनुभव नहीं हो पा रही, क्योकि इस सम्बन्ध में आज सब जानते हैं और चिंचित भी हैं। विद्यार्थियों में निरंतर बढ़ रही अनुशासनहीनता तथा उनकी उद्दंडता का मुख्य कारण क्या है? इसे खोजने का यत्न कोई नहीं करता क्योंकि मुख्य कारण की खोज के बिना हम उस समस्या का प्रतिकार नही कर सकते, इसलिए इसके मुख्य कारण की खोज आवश्यक है। इस कारण को खोजने का जब हम प्रयास करते हैं तो हम पाते कि:–

अपने इस लेख में विद्वान् लेखक ने आज के विद्यार्थी की अनुशासनहीनता और आज के अध्यापक की दयनीय अवस्था का चित्रण करते हुए बताने का प्रयास किया है कि आज की मैकाले शिक्षा पद्धति से हमारी गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति कहीं अधिक उत्तम ही नहीं थी अपितु वह शिक्षा पद्धति एक प्रकार से सम्पूर्ण शिक्षा पद्धति थी। इस शिक्षा में गुरु को किसी अधिकारी का कभी डर नहीं होता था। वह अपने विद्यालय का स्वामी होता था तथा वानप्रस्थाश्रम में होने के कारण वह किसी से शिक्षा में गुरु को किसी अधिकारी का कभी डर नही होता था। वह अपने विद्यालय का स्वामी होता था तथा वानप्रस्थाश्रम में होने के कारण वह किसी से शिक्षा के लिए कोई धन भी न लेता था। शिक्षा दान को वह अपना कर्तव्य समझता था। हाँ! भिक्षा के लिए निकट के गाँव अथवा नगर में जाते थे और जो मिलता था, लाकर गुरु चरणों में डाल देता था। गुरु इस भिक्षा के प्रतिफल से ही स्वयं का तथा सब ब्रहमचारियों का भरण पौषण करता था और कभी कोई अभ्यागत आ जाता था तो उसका भरण का कार्य भी इस भिक्षा में प्राप्त सामग्री से ही होता था।

इस के साथ ही साथ उस समय का गुरु अपने विद्यार्थियों, जिन्हें उस युग में ब्रह्मचारी कहा जाता था, को अपने अंतःवासी मानता था तथा उन सबका पालन उस प्रकार ही करता था, जिस प्रकार उसके आपने परिवार में उसके माता तथा परिजन करते थे। विद्यार्थी को पता ही न चलता था कि वह किसी गुरुकुल में है अथवा अपने घर में। यहाँ सब बच्चों को समान शिक्षा और समान स्नेह मिलता था, चाहे वह राजा की संतान हो अथवा रंक की। कृष्ण और सुदामा का उदाहरण तो हम सदा देखते ही हैं। इस प्रकार की शिक्षा का ही परिणाम होता था कि विद्यार्थी गुरु आज्ञा को देवाज्ञा मानते हुए उसे पूर्ण करने के लिए अपने प्राण तक भी देने को तैयार रहते हैं। इस निमित्त हम अरुणी का उदाहरण देखते हैं, जिसने अपनी गुरु आज्ञा की पूर्ति के लिए स्वयं को सर्दी की ऋतु में उस मेंढ पर डाल दिया जहाँ से खेत के पानी का निकास वह बंद नही कर पा रहा था। इस प्रकार के समर्पित विद्यार्थी उस काल में हमें मिलते हैं, आज नही। यह ही कारण है कि उस काल के विद्यार्थी उत्तम तथा उच्च वैदिक शिक्षा के आधार पर अपने देश, समाज को आगे ले जाने का कारण बनते थे।

आज के विद्यार्थी के अन्दर अनुशासनहीनता इस सीमा तक बढ़ गई है कि इसे समझाने के लिए आज हमें किसी प्रकार के उदाहरण आदि देने की आवश्यकता अनुभव नहीं हो पा रही, क्योकि इस सम्बन्ध में आज सब जानते हैं और चिंचित भी हैं। विद्यार्थियों में निरंतर बढ़ रही अनुशासनहीनता तथा उनकी उद्दंडता का मुख्य कारण क्या है? इसे खोजने का यत्न कोई नहीं करता क्योंकि मुख्य कारण की खोज के बिना हम उस समस्या का प्रतिकार नही कर सकते, इसलिए इसके मुख्य कारण की खोज आवश्यक है। इस कारण को खोजने का जब हम प्रयास करते हैं तो हम पाते कि:–

1 प्रथम कारण तो हम दूरदर्शन के अवलोकन को ही पाते है, दूरदर्शन पर गंदे गंदे चित्रों का प्रदर्शकराते हुए फुहड़ गाने व धारावाहिक दिखाए जाते हैं, जो विद्यार्थी को अनुशासन से दूर ले जाने वाले होते हैं। इससे विद्यार्थी में अनुशासनहीनता आती है।

2 सार्वजनिक स्थलों पर अश्लील चित्रों का प्रदर्शन भी इस का दूसरा कारण है।

3 आज का विद्यार्थी सिनेमा का अभ्यासी हो गया है, जहाँ अश्लील दृश्य और अश्लील गीत ही उसे मिलते हैं।

4 आज धार्मिक और नैतिक शिक्षा का अभाव हो गया है।

5 परिवारों में भी अनुशासन नहीं रहा।

यह कुछ कारण हमें दिखाई देते हैं, जो आज के विद्यार्थी में उद्दंडता पैदा करने वाले हैं तथा उसे अनुशासन से दूर ले जा रहे हैं। धार्मिक और नैतिक शिक्षा के अभाव में विद्यार्थी निरंतर नैतिक पतन की और बढ़ रहा है। धर्म के बिना उसका जीवन लगातार गिरता चला जा रहा है। वेद तो कहता है कि यदि वेदादि शास्त्रों की शिक्षा विद्यार्थी को दी जावे तो वह निश्चय ही अपने शिक्षकों को अपने कर्तव्यों की पूर्ति में अपना समय लगाते और गुरुजन भी निश्चय ही अपने विद्यार्थी को अपने पुत्र के समान मानते हुए उसे स्नेह देते हुए उसे सदाचारी बनाने का पुरुषार्थ करते, किन्तु आज ऐसा नहीं हैं। यह सब पूर्ववत इस प्रकार हो सके, इसके लिए हमें वेद के उपदेशों को मानना होगा। वेद इस सम्बन्ध में क्या कहता है? इसी चर्चा हम वेद के विभिन्न मंत्रों की व्याखया करते हुए आगे करेंगें।

104 शिप्रा अपार्टमेंट,
कौशाम्बी 201010
गाजियाबाद

हमारी यह गो भक्ति कैसी

जगह–जगह गौ वंश से लदे ट्रक पकड़े जाते हैं। उनमें गोवंश बुरी तरह ठूँस कर भरा होता है, जिससे उनके रंभाने की आवाज बाहर नहीं आए। निकालने पर कुछ मरे मिलती हैं। कभी–कभी बजरंग दल द्वारा पकड़े जाते हैं तो कभी पलटने पर मालूम पड़ते हैं।

व्यापारी वर्ग उन्हें बुरी तरह तड़पाकर मार रहा है, ऐसी गो भक्ति को देखकर दिल दुखता है व सोचने को मजबूर करता है।

जगदीश प्रसाद माहेश्वरी
E–3/789 शहीद नगर
आगरा 282001

पत्र/कविता

जब भले लोग भी समाज की हानि करते हैं

एक स्थान पर 'बर्ट्रैण्ड रसेल ने कहा है– 'The harm that good men do' 'वह हानि जो अच्छे लोग करते हैं।' प्रश्न होता है अच्छे लोग समाज की कौन सी हानि करते हैं? वह हानि है, जब सज्जन और ईमानदार व्यक्ति राष्ट्र की उल्टी सीधी राजनीति से तटस्थ हो जाते हैं, जब वे निरपेक्ष हो जाते हैं। वे राजनीति की धाँधलीबाजी को देखकर भी कहते हैं– हमें इन बातों से कोई मतलब नहीं, जो हो रहा है, होने दो।'

इस प्रकार ईमानदार व्यक्ति, परोपकारी व्यक्ति तटस्थ होकर बुरे लोगों के लिये, धूर्त और मक्कार लोगों के लिये राजनीति में स्थान खाली कर देते हैं। तब राजनीति में वे ही धूर्त लोग अपनी स्वार्थपूर्ण नीति और दाव–पेंच काम में लेकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। फिर वैसा ही समाज, वैसा ही संसार बनता है– जैसा आज हमारे सामने है, और जिसे दिन–रात कोसते रहते हैं। पर क्या आपने कभी गहराई से सोचा है कि इस भले–बुरे समाज का दोषी कौन है?

शायद भद्र पुरुषों को उत्तर सुनकर कुछ या अधिक बुरा लग सकता है लगना भी चाहिए, इसके लिये वे ही लोग जिम्मेदार हैं, बल्कि कहना चाहिए वे ही दोषी हैं, जिन्होंने इस प्रकार के बुरे लोगों के लिये (राजनीति में) जगह खाली छोड़ी है। एक विचारक ने तो इसे ईमानदार लोगों का 'अपराध' तक बताया है। जिसका खामियाजा सारे देश को, समस्त समाज को भुगतना पड़ता है और प्रत्यक्षतः हम और आप भुगत भी रहे हैं।

–डॉ. सहदेव वर्मा
24/4, बिशन स्वरूप कालोनी,
पानीपत (हरियाणा)
दूरभाषः 0180/2643700

****

कथनी करनी एक बने, तभी दिलाती मान

अपने मन के दाग को, लेता तुरत छिपाय।
छिपा हुआ वह पाप ही, सर हर बार उठाय।।

मूरख को नित दिखता, चंदा में भी दाग।
दीखत है गुणवान को, पत्थर में भी आग।

पर वैभव को देखकर, रहा लार टपकाय।
भूले अपने रूप को, वो पाछे पछताय।।

अपनी गलती जानकर, जो करता स्वीकार।
वह जीवन के समर में, कभी न पाता हार।।

तीरथ तीरथ घूम कर, खोजे चारों ओर।
मन तीरथ में देख ले, अंदर उसका ठौर।।

दोष सभी के देख कर, अपने लेत छिपाय।
ऐसा पापी जगत में, पल पल में पछताय।।

कष्ट मनुज के दोष को, देते तुरत जलाय।
सोना भट्टी में जले, तो कुंदन बन जाय।।

मैं मेरा के भाव से, सर पर बोझ उठाय।
तूने ही सब कुछ दिया, सर से बोझ हटाय।।

मन में रहे विचार जो, वही अधर पर आय।
लाख छिपाये ना छिपें, आपा देत दिखाय।।

केवल कथनी से कभी, ना बनती पहचान।
कथनी करनी एक बने, तभी दिलाती मान।।

नरेन्द्र आहूजा 'विवेक'
602/जी.एच. 53
सेक्टर–20, पंचकूला
मो. 09878748899

हत्या से भी ज्यादा पाप है आत्महत्या में!

देश–धर्म और मानवता की रक्षा हेतु सहर्ष आत्मोत्सर्ग करते रहे हमारे युवाओं के इस देश में अब द्वेष–दंभ और कुंठाओं में ही प्रतिदिन 20 आत्महत्यारे बनने की मानो फैशन चल पड़ी है। ये हम राष्ट्र चिंतकों के लिए ही घोर चिंता की बात है।

इन मूर्ख–पापी–दगाबाजों को नहीं पता होता है कि इनके अमूल्य शरीर को माता–पिता कितने यत्न और अरमानों से संवारे हैं, एवं इनसे कितने लोगों की कितनी मौन–उम्मीदें लगी रही हैं।

जैसे अपने कमाये रूपयों को भी फाड़ना या जलाना दंडनीय है, क्योंकि इस राष्ट्रीय मुद्रा–पत्र का लेन–देन करने भर का ही हमें अधिकार है, उसी तरह माता पिता के माध्यम से परमात्मा के बनाये इस तन को किसी भी हालत में खुद ही मिटा देने का मुझे कोई अधिकार नहीं। बल्कि जहाँ तक हो सके इसे बचाते रह के विपरीत परिस्थितियों से लड़ते रहना या उससे समझौता कर लेना भी खुदकुशी से कहीं अच्छा है। महोद्देश्य हेतु खुदीराम, आजाद, भगत, अशफाक उल्ला, बिस्मिलह आदि की तरह शरीद हो जाना तो जीवन–यज्ञ की पूर्णता है ही, किन्तु ऐसा उच्च सौभाग्य पाने को खुदकुशीकारी नीच नर सोच भी नहीं पाता।

आत्महत्या करना किसी की हत्या करने से भी दूना पाप कर्म है। क्योंकि दूसरे को मारने पर वह बचाना चाहेगा, जबकि रक्षक ही खुद को मारने लगे तो उसे कौन बचायेगा? इसीलिये मनु (5.89) पराशर (4.3.4) महाभारत (कर्ण. 70.28) स्कंद (काशी. 12.12) कूर्म (23.72) नारद (14.21) पुराणादि में लिखा है कि सुताभोग की तरह आत्महत्या करते ही मनुष्य का सारा पुण्य पाप में बदल जाता है, ऐसे महापापी को हजारों वर्ष तक घोर नरकों में तड़पने से वेद और गंगा भी नहीं बचा पाते। कोई आत्म–हत्यारा किसी तरह बच भी जाये तो वह एकांत में चंद्रायण व्रत या दूर देश जाकर गो सेवा–जन सेवा करके ही पाप मुक्त हो पाता है।

आत्महत्यारे के शव को निकृष्ट मनुष्यों से बंधवा कर घसीटते हुए जंगल–झाड़ी में फेंकवा देना चाहिये। जान बूझकर जहर, शराब, शस्त्रादि से खुदकुशी करने पर किसी को कोई सूतक नहीं लगता। ऐसे पापी के मरने पर रोने वाला, सहानुभूति रखने वाला या श्राद्ध करने–कराने वाला भी आत्म हनन का पापी एवं पदच्युत हो जाता है (कोटिल्यार्थ शास्त्र– 4.7).

किंतु आजकल के भ्रष्ट पाखंडी और कसाई बने पुरोहित–धर्माचार्य लोग ऐसे शब्दों में विपुल दान हड़पने के लोभ को त्याग करके यदि अपने प्रवचनों में आत्महत्या की भयंकरता का प्रचार करते तो निश्चय ही आत्महत्या का मानसिक रोगावेश समाज से मिट जाता। क्योंकि अधिकतर कायर मूर्ख लोग इसी क्षणिक भ्रमावेश में वह अक्षम्य क्रूरतम पाप कर बैठते हैं कि आत्महत्या करना मेरा मौलिक और निर्दोषाधिकार–कर्म है। ऐसे गद्दार बन चुके को धिक्कार!

पं. आर्य गिरि
मुख्य पुजारी, निंगा, आसनसोल (पं. बं.)

****

आर्य समाज का प्रचार आज के समय में अत्यन्त आवश्यक है

आपके द्वारा प्रेषित पत्रिका आर्यजगत के 34 से 37 अंक (23 अगस्त 2015 से 19 सितम्बर 2015) प्राप्त हुए, धन्यवाद!

पत्रिका द्वारा आर्यसमाज द्वारा वर्तमान में किए जा रहे कार्यों की जानकारी मिली। डीएवी स्कूल/कालेजों के बारे में समाचार मिलते रहते हैं। आर्य समाज की उदार प्रकृति का प्रचार आज के समय में अत्यन्त आवश्यक है, ताकि महर्षि दयानन्द का जीवन दृष्टि जन–जन तक पहुँच सके।

शुभ कामनाओं सहित।

निर्मल सिंहल
सम्पादक – जनभाषा सन्देश
केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद्
6 संसद मार्ग, नई दिल्ली–110001

****

वेदो में भी है जीन्स रहस्य

● श्रीमती मनीषा विमल

आजकल समाचार पत्रों में जैनेटिक समस्या अर्थात् जैविक विकास पर वृहद अनुसन्धान किये जाने के विषय में प्रायः बहुत कुछ पढ़ने को मिलता है। इसका मुख्य विषय 'जीन्स' होता है। इन्हीं जीन्स के द्वारा मानव का व्यक्तित्व, विचार, बुद्धि, आचरण, व्यवहार तथा शारीरिक प्रक्रिया निश्चित होती है।

परम पिता परमात्मा ने चेतन जीव के विकास का साधन प्रजनन को बनाया है। सृष्टि में जीव को विभिन्न प्रकार के शरीर मिले हैं। इन शरीरों के निर्माण के सूक्ष्मतम अणु का नाम 'प्रोटोजोया' या कोशिका कहलाता है। प्रत्येक जीव का शरीर पंचभूत व पंच तन्मात्रायें एवं अन्तःकरण से बना है। पशु पक्षी कीट पतंग में अन्तःकरण विकसित नहीं होता है, जबकि मानव शरीर में अन्तःकरण का विकसित रूप मन, बुद्धि चित्त व अहंकार के रूप में होता है।

प्रायः कहा जाता है कि 'जीवात्मा' में पूर्व जन्म के संस्कार रहते हैं, जो एक शरीर से दूसरे शरीर में आत्मा के साथ स्थान्तरित होते रहते हैं। अब प्रश्न उठता है कि यह स्थान्तरण कैसे होता है जबकि शरीर तो प्रजनन क्रिया द्वारा बनते है। मानव जैविक रसायन का अद्भुत सम्मिश्रण है। इसकी सूक्ष्मतम इकाई कोशिका कहलाती है जिसमें मुख्य केन्द्र न्यूक्लियस है। इसमें तेइस जोड़े क्रोमोजोम्स के मिलते है जो माता पिता के संयोग से निर्माण होने पर जीव में गर्भ में जाते है। इन क्रोमोजोम्स में तीन लाख जीन्स होते हैं, जिनके द्वारा किसी भी शरीर की आकृति, गुण, दोष, स्वास्थ्य, बुद्धि व पैतृक गुण आते हैं। इसी कारण मनुष्य का बच्चा मनुष्य और पशु का बच्चा पशु, पक्षी का पक्षी ही बनता है। और उसी शरीर के अनुरूप आदतें व खान पान, रहन सहन ग्रहण करता है।

सर्वप्रथम 1905 में 'जानसन' नामक वैज्ञानिक ने इस विषय में खोज की और पाया कि माता पिता से मिलती जुलती शक्ल, गुण, दोष, स्वभाव जीन्स द्वारा ही स्थान्तरित होते हैं। जबकि वेदों में इसका मूलभूत सिद्धान्त बीज रूप में प्राप्त होता है। महर्षि दयानन्द इसीलिये वेदों को सब सत्य विद्याओं की पुस्तक बताते हैं। ऋग्वेद मन्डल 7 की सूक्त संख्या 86 के पाँचवें मन्त्र से यही जीन्स रहस्य सिद्ध होता है।

अव दुग्घानि पित्र्या सृजा नोऽव या चकृमा तनूभिः। अव राजन्पशुतृपं न तायुं सृजा वत्सं न दाम्नो वसिष्ठम्। भावार्थ–हे सर्वोपरि राजन (दुग्घानिपित्र्या)–माता पिता की प्रकृति से (नः) हममें आये हुये दोष और जिनको हमने (तनूभिः) उनके शरीर द्वारा प्राप्त किया है और जो (पशुतृपं) पशुओं के समान हमारी वृत्ति तथा (तायु नः) चोरों के समान भाव है उन्हें (अवसृज) दूर करके मुझे मुक्त करो, (वशिष्ठ) सद्गुण तथा सद्सगति द्वारा।

सन् 1968 में भारतीय वैज्ञानिक डॉ. हर गोविन्द खुराना को अनुवांशिक गुण सूत्रों के अन्वेषण के लिये नोबेल पुरस्कार मिला था, उन्होंने सिद्ध किया था कि "जीन्स द्वारा आनुवांशिक गुण रोग व व्यक्तिव का निर्धारण होता है, साथ ही हमारी विचार शक्ति को भी प्रभावित करता है। इसीलिए वेद मन्त्र में दुर्गुण तथा दुष्प्रवृतियों को सद्गुणों तथा सद्संगति से दूर करने का प्रयत्न करने को कहा गया है।

'जीन' के द्वारा ही मानव जीवन का क्रिया–कलाप पैतृक रोग–जैसे मानसिक विकार, रक्तचाप, पागलपन, क्षयरोग, विचार शक्ति, व्यक्तित्व, रूप, रंग तथा बुद्धि का स्थान्तरण होता है। यह प्रत्येक व्यक्ति में मौलिक रूप से वंशानुगत ही होते हैं। इसी कारण कोई दो व्यक्ति कही भी कभी भी एक से नहीं होते यहाँ तक कि जुड़वाँ बच्चे भी सदैव एक से नहीं होते।

यद्यपि जैविक विज्ञान में भांति–भांति के शोध हो रहे हैं तथा उन 'जीन्स' के द्वारा कैन्सर, मानसिक रोग ठीक करने की दिशा में काफी प्रयास किये जा रहे हैं फिर भी यह एक अटल सत्य है कि 'जीन्स' की अपनी अलग विशेषता है जो माता पिता द्वारा ही आती है इसी कारण नीग्रो की सन्तान नीग्रो, गोरों की सन्तान गोरी, चायनीज की नाक चपटी, विभिन्न जातियों में आंखे छोटी बड़ी भिन्न–भिन्न प्रकार की, पशुओं पक्षियों के बच्चे उन्हीं के आकार प्रकार के होते हैं। किसी भी जाति को किसी भी देश में रख दिया जाय किन्तु उनकी आकृति उनके माता पिता के अनूरूप ही होगी।

एक और वेद मन्त्र है, जिससे मनुष्य में आये स्वभाव में दोष व गुण पैतृक सिद्ध होते हैं, वह भी माता की पाँच पीढ़ी और पिता की सात पीढ़ी में से लिये गये क्रौंमोजोम्स के द्वारा स्थान्तरित होते हैं। महर्षि दयानन्द जी ने इसी कारण विवाह सम्बन्ध बनाने में उन पीढ़ियों के दोषों के होने पर विवाह का निषेध किया है, जैसे परिवार में पागलपन, क्षय, बुद्धिहीनता, चोरी, जुआरी आदि प्रकार के दोष। क्योंकि माता–पिता से मिला स्वभाव जीव की उन्नति या अवनति का कारण होता है।

"न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः।'
अस्ति ज्यायान्कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता।।

ऋ.म.7 सू.86 म.6

भावार्थ– (स्वः) अपने स्वभाव (दक्षः) से जो कर्म किया जाता है (सः) वही पाप वृत्ति का कारण नहीं होता किन्तु (ध्रुतिः) मन्द कर्म (अचित्ति) अज्ञान (मन्यु) क्रोध जो पाप वृत्ति के कारण होता है (विभिदकः) छूतादि व्यसन (सुराः) मद तुल्य विचार भी वर्तमान जीवन में पाप की ओर ले जाने वाले होते हैं। इस जीव के हृदय मे अन्तर्यामी पुरुष भी है जो शुभ कर्मी को शुभ कर्म की ओर प्रेरित करता है। किन्तु स्वप्न में किया कर्म अनृत की ओर ले जाता है।

उस मन्त्र से भी आशय यही है कि माता–पिता के जीन्स द्वारा जो दोष जीव में आते हैं जिन्हें प्रारब्धजन्य कुप्रवृत्ति कहा गया है वह भी पाप की ओर ले जाने वाले होते हैं।

मानव का स्वभाव व व्यवहार जीन्स द्वारा तय होता है। किस परिस्थिति में कैसा व्यवहार करता है यह जीन्स द्वारा ही तय होता है। वेद मन्त्र में भी यही कहा गया है, कि जो पाप जन्य प्रवृत्ति है परमात्मा उन्हें दूर करने की सामर्थ्य दे, अनेक शोधों से यह तय हो चुका है कि उचित वातावरण, आहार व शिक्षा मिलने से बहुत कुछ मनुष्य के इन दोषों को सुधारा जा सकता है। मन्द बुद्धि या अत्यन्त क्रोधी या मानसिक दोष वाले बच्चे को उचित शिक्षा, वातावरण, स्वस्थ आहार मिलने पर वह मध्यम श्रेणी का बालक बन जाता है। इस विषय पर मनोवैज्ञानिक में अक्सर विवाद रहा है कि बच्चे पर अनुवांशिकता का प्रभाव रहता है या वातावरण का। किन्तु वेद में स्पष्ट कहा गया है कि सद्गुण व सत्संग से दूर किया जा सकता है (ज्यायान कनीयस उपारे) अन्तरयामी पुरुष शुभ कर्मों की ओर प्रेरित करता है।

आजकल जैविक विषय पर बहुत खोज हो रही है तथा अनेक रोगों को ठीक करने के लिये जीन्स का सहारा लिया जा रहा है। अभी कुछ दिन पूर्व समाचार पत्र में एक समाचार पढ़ा "कैन्सर को हराने वाले जीन की खोज की गई है" "महिलाओं में मानसिक बीमारी के जीन की पहचान" जब कि वेद मन्त्र में बीज रूप में उन्हीं विषयों की ओर इंगित किया गया है। आवश्यकता है वेदों में दिये गये मन्त्रों के रहस्यों को जानने की, समझने की, ईश्वर की बनाई सृष्टि में अवश्य ही ऐसा कुछ नियम है जो पीढ़ी दर पीढ़ी दिखाई देता है और किसी विशेष तरीके से आता है। शायद यही "जीन" है। 'जीन' का सिद्धान्त है जो वेद मन्त्रों में बीज रूप में है।

2/25 आर्य वानप्रस्थ आश्रम
ज्वालापुर, हरिद्वार
मो. न. 09760618162

देव यज्ञ का स्वरूप

● कृपाल सिंह वर्मा

आजकल ऋग्वेद परायण यज्ञ, यजुर्वेद परायण यज्ञ, सामवेद परायण यज्ञ तथा अथर्व वेद परायण यज्ञों की बड़ी परम्परा है। प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थों में इस प्रकार के यज्ञों की चर्चा भी नहीं है। इनमें सोम यज्ञ, ज्योतिष्टोम यज्ञ, अग्निष्टोम् यज्ञ, राजसूर्य यज्ञ और वाजपेय आदि यज्ञों का विस्तृत वर्णन है। प्रकृति की दिव्य शक्तियों का उपयोग जीवन को स्वर्ग बनाने के लिए करना ही देव यज्ञों का उद्देश्य है। ब्राह्मण आदि वैज्ञानिक ग्रन्थों में ब्रह्माण्ड को तीन भागों में विभक्त किया है– (1) पृथिवी लोक (2) अन्तरिक्ष लोक (3) द्युलोक। पृथिवी लोक में पायी जाने वाली प्रमुख दिव्य शक्ति अग्नि है। अन्तरिक्ष में पायी जानी वाली वायु है तथा द्युलोक की शक्ति सूर्य है। पृथ्वी पर पायी जाने वाली शक्तियों को वसु, अन्तरिक्ष में पायी जाने वाली शक्तियों को रुद्र तथा द्युलोक में पायी जाने वाली शक्तियों को आदित्य कहते हैं।

वेदों में समस्त आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक शक्तियों का वर्णन मिलता है। परन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रमुख रूप से आधि दैविकशक्तियों का ही वर्णन मिलता है। शतपथ ब्राह्मण यजुर्वेद की आधिदैविक व्याख्या है। इसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण ऋग्वेद की आधिदैविक व्याख्या है।

वेद मंत्रों में निहित विज्ञान को समझकर जीवन उपयोगी शिल्प को विकसित करने से ही जीवन सुखी बनता है और यही दैविक यज्ञ है। वेद मंत्रों का उच्चारण मात्र करके तथा कुण्ड में आहुति से इस उद्देश्य की प्राप्ति नहीं होती।

महाभारत काल में वैदिक विज्ञान अपने उज्ज्वल रूप में विद्यमान रहा। इस समय लोगों का देश देशान्तर तथा लोक लोकान्तर में आना जाना रहा। कुरुक्षेत्र में होने वाले युद्ध का आँखों देखा हाल संजय महाराज धृतराष्ट्र को हस्तिनापुर में बैठकर सुनाते रहे। ऐसी अनेक घटनाएं जो बिना वैज्ञानिक युक्तियों के नहीं हो सकतीं। अद्भुत अस्त्र शस्त्रों का वर्णन मिलता है।

विनाशकारी महाभारत युद्ध में बड़े–बड़े वैज्ञानिक मारे जा चुके थे। उस समय देश में वैभव आवश्यकता से बहुत अधिक था। देश का अभाग्योदय होने के कारण ब्राह्मण वर्ग ने विद्या प्राप्ति के तप मार्ग का परित्याग कर विलासिता का जीवन अपना लिया। इस कारण सभी अविद्या के मार्ग पर अग्रसर हो गये। इस समय तक वैज्ञानिक पुस्तकें अस्तित्व में रही होंगी। आज से हजार वर्ष पूर्व वे पुस्तकें भी बाह्य आक्रमणकारियों ने नष्ट कर दी। परतन्त्रता की बेड़ियों में पड़कर लोग आध्यात्मिक अन्धकार में फंसते चले गये और चारों ओर पाखण्ड का साम्राज्य हो गया। महर्षि दयानन्द के "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है"– उदघोष के बाद विद्वानों का ध्यान वैदिक विज्ञान की ओर गया।

253 शिवलोक, कंकरखेड़ा, मेरठ
फोन– 9927887788

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11 \6066\2015-17
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103 \2015-17
Posted at N.D.P.S.O. ON 28-29 \10 \2015
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39 \57

डी.ए.वी. इंटरनैशनल, अमृतसर द्वारा स्वामी विरजानंद जी की पुण्य तिथि पर 'आर्य समाज लोहगढ़' में हवन का आयोजन

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा, पंजाब के तत्वावधान में डी.ए.वी. इंटरनैशनल स्कूल, अमृतसर द्वारा स्वामी विरजानंद जी की पुण्य तिथि एवं शहीद भगत सिंह जी के जन्म दिवस के अवसर पर आर्य समाज लोहगढ़, अमृतसर में पावन हवन यज्ञ का आयोजन किया गया। इस अवसर पर गुरु नानक देव विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष डॉ. दलबीर सिंह चाहल, विद्यालय के चेयरमैन डॉ.वी.पी. लखनपाल एवं क्षेत्रीय प्रबन्धिका डॉ. श्रीमती नीलम कामरा विशेष रूप से उपस्थित थे।

प्रिंसीपल अंजना गुप्ता ने अतिथिगणों का स्वागत पुष्प मालाओं से किया। उन्होंने मानव जीवन में हवन की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहा कि वर्तमान जीवन शैली हमें प्रकृति से दूर कर रही है, हम अपनी संस्कृति को भूल रहे हैं। नियमित रूप से वैदिक रूप से हवन का आयोजन हमें प्रकृति से जुड़ने की भी प्रेरणा देता है और हमारी संस्कृति से भी हमें जोड़ता है।

कक्षा पाँचवीं की लड़कियों द्वारा वैदिक मंत्रों का उच्चारण किया गया। मंत्रोच्चारण के साथ पवित्र हवन अग्नि में घी व सामग्री की आहुतियाँ अर्पित की गई। सम्पूर्ण वातावरण सुगंधि व सात्विकता से परिपूर्ण हो गया।

डॉ. वी.पी. लखनपाल जी ने भी उपस्थिति को संबोधित करते हुए कहा कि वैदिक मंत्रों से मानसिक विकारों की शुद्धि होती हैं और हवन यज्ञ में होम की गई सामग्री वातावरण की अशुद्धि दूर करती हैं। इससे कई प्रकार के रोगों के कीटाणु नष्ट होते हैं। इसलिए हम सब को अपने घरों में नियमित रूप से हवन का आयोजन करना चाहिए।

डॉ. दलबीर सिंह चाहल ने भी उपस्थिति को संबोधित करते हुए कहा कि वेद हमारी संस्कृति का आधार है। वेदों का प्रारंभ सृष्टि के प्रारंभ से ही माना गया है। विश्व को ज्ञान वेदों से ही मिला है। वैश्वीकरण के इस युग में युवा पीढ़ी अपने जीवन मूल्य.को भूल रही है। आर्य समाज की शिक्षाएं उन्हें अपने मूल की ओर लौटने की प्रेरणा देती है।

इस अवसर पर विद्यालय के उन छात्र–छात्राओं को विशेष रूप से सम्मिलित किया गया जिनके जन्म दिन सितंबर के महीने में आते हैं। हवन के उपरांत उन्हें अपने मूल की ओर लौटने की प्रेरणा देती है।

इस अवसर पर विद्यालय के उन छात्र–छात्राओं को विशेष रूप से सम्मिलित किया गया, जिनके जन्म दिन सितंबर के महीने में आते हैं। हवन के उपरांत उन्हें वैदिक साहित्य आशीर्वाद के रूप में दिया गया। उनके मंगलमय जीवन के लिए प्रार्थना की गई तथा उज्ज्वल भविष्य की शुभकामनाएं भी दी गईं।

इस अवसर पर स्वामी विरजानंद जी की पुण्यतिथि और शहीद भगत सिंह के जन्म दिन पर श्रद्धांजलि भी अर्पित की गई। इस अवसर पर विद्यालय के छात्र–छात्राओं द्वारा सुदंर वैदिक भजन भी प्रस्तुत किए गए।

इस पावन हवन यज्ञ के आयोजन के अवसर पर स्थानीय डी.ए.वी. प्रबन्धक समिति के माननीय सदस्यों सहित अनेक गणमान्य अतिथि उपस्थित थे।

डी.ए.वी. सोलन में हुआ चरित्र निर्माण शिविर का आयोजन

एम.आर. ए.डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल सोलन (हि.प्र.) में दिनांक 17 एवं 19 अक्टूबर को आर्य युवा समाज के तत्वावधान में दो दिवसीय वैदिक चरित्र निर्माण शिविर का आयोजन अत्यन्त हर्षोल्लास के साथ किया गया। स्कूल की प्रधानाचार्या एवं आर्य युवा समाज की प्रधाना श्रीमती अनुपमा शर्मा के मार्गदर्शन में इस शिविर का आयोजन किया गया। डी.ए.वी. कुमारहट्टी और डी.ए.वी. सोलन के 60 विद्यार्थियों ने इस शिविर में भाग लिया।

इस वैदिक निर्माण शिविर का शुभारम्भ शनिवार प्रातः स्कूल सभागार में वैदिक संध्या एवं हवन के साथ किया गया जिसमें श्रीमती अनुपमा शर्मा ने मुख्य यजमान के पद को सुशोभित किया। हवन के पश्चात् उन्होंने विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए ''**आचारो परमो धर्मः**'' की शिक्षा दी। उन्होंने कहा कि, व्यक्ति के जीवन में आचरण का अत्यन्त महत्व है। आचरण के द्वारा ही मनुष्य की पहचान होती है। उन्होंने व्यावहारिकता पर ध्यान केन्द्रित करते हुए व्यावहारिक गुणों के विकास के लिए प्रेरित किया। इस अवसर पर कुमारहट्टी डी.ए.वी. स्कूल के प्रधानाचार्य श्रीमान एच.सी. सरकेक भी उपस्थित रहें।

शिविर के दौरान दोनों दिन प्रातः विद्यार्थियों को आसन प्राणायाम सहित विभिन्न यौगिक क्रियाओं के माध्यम से मन को एकाग्र करने की विधि का अभ्यास करवाया गया। इसके अतिरिक्त डी.ए.वी. सोलन के धर्माचार्य श्रीमान दीपक जी ने की कला, चरित्र एवं मूलयों की आवश्यकता, सदाचार, समय नियोजन, नैतिकता का विकास आदि के महत्व पर प्रेजेंटेशन के दौरान संगीताचार्य श्री परविन्दर सिंह ने अपने मधुर भजनों द्वारा शिविर में उपस्थित बच्चों का मार्गदर्शन किया। इस शिविर में आर्य युवा समाज की ओर से श्रीमती वीना कौशिक, मीरा गुप्ता, सीमा देवगन, अंजू सांगल, सोनी शेर, मोनिका भारद्वाज, नेहा शर्मा आदि ने अपना सहयोग प्रदान किया।

डी.ए.वी. पटियाला में श्रावणी उपाकर्म के उपलक्ष्य में वेद-प्रचार एवं संस्कृत सप्ताह

डीए.वी. संस्था द्वारा वैदिक संस्कृति का प्रचार–प्रसार करना एक सराहनीय कार्य है। वेद विश्व को मानवता का पाठ पढ़ाते हैं। राष्ट्र को विकास व नई दिशा की ओर ले जाने के लिए युवा पीढ़ी को वेदों का ज्ञान देना अति आवश्यक है। आप सभी शिक्षकवृन्द व विद्यार्थी बड़े भाग्यशाली हैं कि आप 'वैदिक व आर्य समाज' की विचारधारा पर आधारित डी.ए.वी. संस्था से जुड़े हुए हैं।" यह कहना था महारानी परनीत कौर (पूर्व, विदेश मंत्री, भारत सरकार एवम् विधायिका पटियाला) का जो 'आर्य युवा समाज' डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल भूपिन्द्रा रोड, पटियाला द्वारा श्रावणी उपाकर्म के उपलक्ष्य में 'वेद प्रचार व संस्कृत सप्ताह' के समापन समारोह पर आर्य 'सप्त–कुण्डीय यज्ञ' में मुख्य यजमान के रूप में बोल रही थीं। बच्चों को हवन प्रक्रिया सिखाने हेतु विद्यालय परिसर में पूरा मास वैदिक हवन किया गया। बच्चों को संस्कृत भाषा के पठन–पाठन के लिए प्रेरित करने तथा वेदों का ज्ञान देने हेतु स्कूल में सप्ताह भर 'ईश्वरस्तुतिप्रार्थना उपासना मन्त्र एवम् श्लोकोच्चारण', 'वैदिक भाषण, 'वैदिक प्रश्नोत्तरी एवं 'वैदिक सूक्ति व्याख्या' प्रतियोगिताएँ करवाई गई। जिनमें लगभग 500 विद्यार्थियों ने बड़े उत्साहपूर्वक भाग लिया।

प्राचार्य एस.आर. प्रभाकर ने महारानी व अन्य अतिथियों का स्वागत करके अपने सम्बोधन में कहा, "हम बड़े भाग्यशाली कि हमारे पास 'सम्पूर्ण ज्ञान के भण्डार वेदों' की अमूल्य धरोहर आर्य समाज के संस्थापक युग पुरुष महर्षि दयानन्द सरस्वती ने कल्याण हेतु वेदों का पुनः उत्थान किया। उनके आदर्शों की पालना करते हुए डी.ए.वी. संस्था वेदों के प्रचार–प्रचार में अथक प्रयास कर रही है। विश्व में फैले आतंकवाद, भ्रष्टाचार, अशान्ति, असंतोष व आपसी द्वेष को वेदों का पाठ पढ़ाकर ही समाप्त किया जा सकता है।"

मुख्य अतिथि ने प्रतियोगिताओं के विजयी रहने वाले विद्यार्थियों एवं उत्सव को सफल बनाने में सहयोग प्रदान करने हेतु श्रीमती स्वराज शर्मा (संस्कृत विभागाध्यक्ष), सोनम (संस्कृत अध्यापिका) व श्री राजप्रसाद (माली) को "वैदिक साहित्य" के साथ स्मृति चिह्न देकर सम्मानित किया। इस अवसर पर स्थानीय आर्य समाज के प्रधान श्री राजकुमार सिंह श्री हर्ष कुमार आर्य, प्रो. मोदगिल, डॉ. रमेश पुरी, बच्चों के अभिभावक एवम् नगर के अनेक गणमान्य व्यक्ति उपस्थित रहे।

परमपिता परमेश्वर के आशीर्वाद स्वरूप 'ऋषि लंगर' शान्ति–पाठ के साथ समारोह सम्पन्न हुआ।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.**, डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुदित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**